कम्युनिस्ट
इंटरनेशनलिस्ट
Communist Internationalist

नंबर 7 पन्द्रह रुपया अगस्त 1999

इस अंक में

भारतीय उपमहाद्वीप : जंगों तथा विनाश का स्थायी आखाडा

शासक वरग करगिल "विजय" के जशन मनाने में व्यस्त है। करगिल में जंग के अन्त की आधिकारिक घोषणा के बावजूद जंगें जारी हैं : कशमीर तथा असम में "मिलिटेन्टस" तथा सेनाओं के बीच दैनिक टकराव तथा मौतें, स्वयं कशमीर में भारत पाक सेनाओं में झडपें। अन्य खुली नई जंगों की तैयारी जारी है। प्रचार के सब साधन जंग की उचितता सिद्व करने में व्यस्त हैं।

एक देश जहां दिल्ली तथा बंबई जैसे शहरों में भी आबादी का बहुमत आधिकारिक गरीबी रेखा के नीचे तथा झोंपडपट्टियों में जीता है। जहां अभी भी गांव हैं जिनमे भुखमरी पाई जाती है और बुर्जूआज़ी का राष्ट्रीय ढांचा चिथडे-चिथडे है, शासक वरग "महाशक्ति" होने के खब्बावों से क्रस्त है। अपनी अक्षमता को अपनी विध्वंसकता से ढांपते हुए, उसने प्रमाणूअस्त्रों की तैनाती के लिए सत्तर हज़ार करोड रुपये ($ 18 billion) खरच का सर्वसमत्त प्रस्ताव पास किया है। यह अन्य सभी स्तरों पर सैन्यीकरण की अन्धी दौड के समान्तर तथा उसके अतिरिक्त है : नई, अधिक मारक मिसाईलें, नई तोपें, नये बम्ब बर्षक, नया अधिक विनाशक गोला बारुद, जसूसी सेटलाईट, पनडुब्यिां तथा जंगी बेडे। यह सब पाकिस्तान में हूबहू प्रतिबिम्बत है।

भारत और उसका जोडीदार पाकिस्तान अपने शाही खब्बावों तथा शैतानी मंसूबों की पूर्ति के लिए समूचे महाद्वीप को विनाश की ओर धसीट रहे हैं : प्रमाणूअस्त्र दौड, न्युट्रोन बम्ब बनाने की ढींगें, करगिल, कशमीर, अटलांटिक को मार गिराना, "न्युक्लियर सिद्वान्त"। पूँजी के विभिन्न गुटों में होड लगी है : कौना सबसे बडा जंगखोर है, जंग कौन अधिक "प्रभावशाली (यानी अधिक तांडवी) तरीके" से लड सकता है। उपमहाद्वीप स्थायी जंग, विनाश तथा नरसंहारों का अखाडा है।

पर भारतीय उपमहाद्वीप में यह स्थायी जंग दुनिया में एक अपवाद नहीं। यह विश्वव्यापी पैमाने पर तीखे होते साम्राज्यवादी टकरावों का हिस्सा है। मिसाल स्वयं यह तथ्य है कि करगिल जंग यूरोप के केन्द्र में, कोसोवो में, नाटो द्वारा दूसरे विश्वयुद्व के बाद की विशालतम, तथा सबसे विनाशकारी बंम्बारी की छाया में आरंभ हुई और उसके समान्तर चली। इसमें नाटो की अगुआई में सभी महाशक्तियों ने हिस्सा लिया। स्वयं शासक वरग अनुसार कोसोवो में नाटो कार्यवाही ने विश्व स्तर पर जंग की लपटों में घी डाला है और आगामी जंगी विस्फोटों की राह खोली है :*"कोसोवो में अमेरिकी अगुआई वाले वहुराष्ट्रीय गठजोड की सफलता एशिया में मिसाईलो तथा जनसंहार के हथियारों के प्रसार के रुझान को मज़बूत करेगी .... हर राष्ट्र के लिए अब लाजिमी हो गया है कि वह बेहतरीन सैनिक तकनालोजी हासिल करे"* (*इंटरनेशनल हेरल्ड ट्रिब्यून,19 जून 1999*)।

कोसोवो में नवीनतम जंग युगोस्लाविया तथा इराक में दस बरस से चल रही साम्राज्यवादी जंगों तथा नरसंहारों की श्रांखला में एक कडी है। ये स्थान उन दर्जनों देशों में से हैं जहां महाशक्तियों की प्रतिद्विन्द्वता तथा टकरावों ने मौत तथा विनाश बरपा किया है : अल्जीरिया, जमबिया, सोमालिया, इथोपिया, रुआंडा आदि -जहां लाखों मारे गए तथा लाखों अन्य शरणार्थी बना दिये गए। चन्द साल पहले तक ये अमेरिकी फ्रेन्च तथा अन्य ताकतों की "मानवतावादी चिन्ताओ" के केन्द्र में थे। इन इलाकों में आज भी मारकाट जारी है पर अब साम्राज्यवादी चीलों का ध्यान दूसरी जगह केन्द्रित है।

यह सब जबकि मात्र दस बरस पूर्व, सोवियत युनियन के पतन के बाद विश्व बुर्जूआजी एक "नई विश्व व्यवस्था" के उदय की तथा महाशक्तियों की विश्वव्यापी होड के, युद्धों के तथा फसादों के अन्त की घोषणाएँ कर रहा था। कुछ ने तो जोश में "इतिहास के अन्त" की ही घोषणा कर डाली थी। बाजार आधारित व्यवस्था की अन्तिम जीत के जशन मनाए गए थे। प्रचारित किया गया कि शान्ति के तथा विकास के एक नए दौर का सूत्रपात हुआ है जो पूर्वी यूरोप तथा समूचे विश्व के लिए "शान्ति के लाभांश" लेकर आएगा।

तब आईसीसी ने (तथा अन्य इंटनरेनशनलिस्टों ने) बुर्जूआजी के झूठों के इस नाद का पर्दाफाश किया। और स्पष्ट किया कि सोवियत यूनियन, जो मात्र एक विकृत राज्यपूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी निजाम था, के पतन का अर्थ केवल यह था कि दूसरे विश्वयुद्व से जारी गुटों की खूँखार होड में तथा अन्धी शस्त्र दौड में वह पिट गया और ध्वस्त हो गया था। इसके साथ ही 1945 मे यालटा में महाशक्तियों द्वारा अंजाम दुनिया का विभाजन तथा तब से आतंक के सन्तुलन पर टिकी व्यवस्था भी ढह गई।

पर इसका अर्थ क्या यह था कि गुटों के विलोप के बाद अब पूँजीवाद साम्राज्यवादी द्वन्द्व का मैदान नहीं बनेगा? "*ऐसी धारणा मार्क्सवाद के पूर्णता विपरीत होगी।* ***....केवल गुटों की चोटी पर बैठी महाशक्तियां ही साम्राज्यवादी नहीं। पूँजीवादी पतनशीलता के दौर में सब देश साम्राज्यवादी हैं तथा अपनी भूखों की तृप्ति के लिए उपाय करते हैं : जंगबाज अर्थव्यवस्था, शस्त्र उत्पादन।*** *हम ज़ोर देकर कहेंगे कि विश्व अर्थव्यवस्था में गहराते तुफान विभिन्न राष्ट्रों में द्वन्द्व, अधिकाधिक सैनिक स्तर पर द्वन्द्व समेत, को तेज़ करेगें। आगामी दौर में फरक सिरफ यह होगा कि ये शत्रुताएँ, जो पहले दो बडे साम्राज्यवादी गुटों द्वारा नियन्त्रित तथा अपने हितों के लिए प्रयुक्त होती थी, खुल कर सामने आ जाएँगी। ....दो गुटों द्वारा थोपे अनुशासन के लोप से इन अन्तरद्वन्द्वों की आवृति का बढना तथा अधिकाधिक हिंसक होते जाना लाजिमी है।*" (पूर्वी गुट के पतन के बाद...., 10 फरवरी 1990, **इंटरनेशनल रिव्यू नंबर 61**)

इन शब्दों पर अभी स्याही भी नहीं सूखी थी कि खाड़ी जंग भडक उठी। तब से हर गुज़रते दिन ने क्रांतिकारियों के विशलेषणों की सत्यता सिद्व की है।

न सिरफ महाशक्तियां बल्कि भारत तथा पाकिस्तान जैसे कंगाल बुर्जूआजी अपनी साम्राज्यवादी पिपसाओं के चलते उसी रास्ते पर हैं – युद्ध अर्थव्यवस्था, जंगखोरी। केवल इसके परिणाम स्वयं उनके लिए अधिक घातक हैं – शाही खब्बावों तथा उनकी प्राप्ति के साधनों में खाई गहरी है।

पिछले सालों में हमने देखा –एक जंग बन्द होने से पहले ही, साम्राज्यवादी ताकतों का द्वन्द्व किसी अन्य क्षेत्र में जंग में फूट पडता रहा है जिनमें महाशक्तियां अधिकाधिक आमने सामने हैं।ञइस रुझान का तेज़ होना लाजिमी है। जंग आज पूँजीवादी जीवन का सबसे अहम तथा केन्द्रीय तत्व बन गई है।

यह भयंकर विनाश की संभावना अपने में लिये है। पर जंग एक निर्मम तरीके से पूँजीवादी व्यवस्था के चरित्र को भी नंगा करती है। यह जरुरी है कि क्रांतिकारी जंग को अपने हस्तक्षेप का फोकस बनाएँ। और जंग के खिलाफ प्रचार को मज़दूर वरग में क्रांतिकारी चेतना के विकास का साधन।

सीआई, अगस्त 1999

आईसीसी पब्लिक मीटिन्ग

दिल्ली में 27 जुलाई की हमारी पब्लिक मीटिन्ग कोसोवो में साम्राज्यवादी जंग के खिलाफ हस्तक्षेप के तौर पर प्लान की गई थी। पर इसी दौरान करगिल में जंग छिड गई। मीटिन्ग के विषय ने, जो एक "दूरदराज़" की घटना से जुडा लग सकता था, एक ठोस, खूनी तथा लाशों के काफिले का रुप अपना लिया।

मीटिन्ग का आरंभ इस पोजीशन को दोहराने से हुआ कि कोसोवो तथा कशमीर, दोनो में संलग्न सभी पक्ष साम्राज्यवादी हैं और मज़दूर वरग दोनों पक्षों का विरोध करता है।

कोसोवो में जंग कोई "मानवतावादी चिन्तओं" का फल नहीं। वह युगोस्लाविया में पिछले दस साल से चलते आ रहे साम्राज्यवादी टकरावों का हिस्सा है। जिसमें जर्मनी, अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन तथा अन्य प्रमुख महाशक्तियों संलिप्त हैं। इस इलाके में जंगों और नरसंहारों का सिलसला आरंभ ही जर्मनी द्वारा युगोस्लाविया को टुकडे-टुकडे करने के प्रयासो से तथा अन्य ताकतों द्वारा उसके मंसूबों के खिलाफ संघर्ष से हुआ। तब से इस इलाके में निरंन्तर दहकती जंग की लपटों के पीछे विभिन्न ताकतों की पैंतरबाजी है। कोसोवो ने इन टकरावों को एक नए, खतरनाक स्तर पर ला खडा किया है।

कशमीर में युद्व भारत-पाक में साम्राज्यवादी टकरावों तथा स्थायी युद्व की स्थिति का हिस्सा होने के साथ साथ, भारत तथा चीन में तेज़ होती व खुलकर सामने आती शत्रुता भी इसमें एक अहम कारक है।

एक थीम जिसे विकसित किया गया वह था आज फैलती जंगों में साम्राज्यवादी ताकतों के लक्ष्य। क्या ये जंगें बाजारों के लिए, तेल के लिए अथवा अन्य कच्चे माल के लिए लडी जा रही हैं?

ये जंगें उतना फौरी आर्थिक लक्ष्यों से, बाजारों की होड से चालित नहीं। बहुतेरे इलाके जहां ये जंगें दहक रही हैं आर्थिक ध्वंस के उदाहरण हैं। कोसोवो तथा कशमीर में बार-बार भडकते युद्ध की जड़ में सवाल बाजारों का बंटवारा नहीं।

कोसोवो तथा युगोस्लाविया में, जैसे इराक तथा शेष विश्व में, छोटी बडी साम्राज्यवादी ताकतों को युद्धों के लिए प्रेरित करते कारण हैं मौजूदा तथा भावी टकरावों के लिए रणनीतिक पोजीशनें हथियाना। व अपने प्रतिद्वन्द्वियों को अपने मकसद पर पहुँचने से रोकने की अफरा तफरी।

इसी प्रकार कशमीर में सवाल बाजारों का नहीं। दांव पर है राष्ट्रीय राज्यों, आज की स्थिति में छुटभैया साम्राज्यवादी ताकतों के रुप में, भारत तथा पाकिस्तान के औचित्य का सवाल।

अन्य सवाल जो बहस का केन्द्र रहे वे थे :

- साम्राज्यवादी तनाव तथा युद्धों का फैलाव;
- क्रांतिकारी चेतना के विकास में जंग का रोल;
- क्रांतिकारियों के कार्यभार।

In this Issue

ICC Public Meetings

New Delhi
Sunday, 28th November, 2.00 PM
Gandhi Peace Foundation,
Near ITO, New Delhi

Calcutta
Saturday, 4th December, 1.00 PM
George Bhawan
Near Sealdah, Calcutta

For subject and other details, please see forth-coming issues of our press. Or Write to : PBN-25, NIT, Faridabad-121001, Haryana

करगिल में भारत-पाक युद्ध पर आईसीसी की स्टेटमेन्ट

एकबार फिर भारत और पाकिस्तान के बीच करगिल में जंग छिड गई है। एकबार फिर बुर्जूआज़ी ने वर्दीधारी मज़दूरों को ऐसे हालातों में एक दूसरे को मारने तथा मरने के लिए धकेल दिया है जहां व्यक्ति बिना जंग के मर सकते हैं। जबकि फौजी एक दूसरे का कतल कर रहे हैं, सीमाओं के निकट रहती आबादियों को उखाड फेंका तथा शरणार्थियों में बदल दिया गया है। जंग के बिना ही गरीबी तथा बदहाली का शिकार, वे खुले कैंपों में जीरो के नीचे तापमान में जी रहे हैं। शासक गिरोहों को, जिनके लिए करगिल में जंग अपनी फूली हुई साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं को टकराने का एक और अवसर है, इसकी परवाह नहीं।

मौजूदा भारत-पाकिस्तान जंग अभी कशमीर तक सीमित है। पर भारत-पाक दोनों ने अपने सैनिकतंन्त्रों को हज़ारों मील तक फैली अपनी सीमाओं पर लामबन्द कर दिया है। पहले ही, फौजों के पीछे जनआबादी को कच्छ से लेकर कशमीर तक जंग की तैयारी में विस्थापित किया जा रहा है। पूँजीपति वरग द्वारा फैलाये जंग के उन्माद तथा दोनों देशें में शासक गिरोहों की हताशा के चलते, दोनों की सीमाओं पर पूर्णजंग कभी भडक सकती है।

यह भारत तथा पाकिस्तान में पहली जंग नहीं। दोनों राज्य, जिनका जन्म 15 अगस्त 1947 को तब हुआ जब विदा होते ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने उपमहादीव्प को दोफाड कर डाला और इस प्रकार एक आपसी नरसंहार की आग भडका दी जिसमें लाखों मारे गए तथा करोडों शरणार्थी बना दिये गए, तत्काल 1948 में जंग पर चले गए। अपनी आबादियों की गरीबी, भुखमरी तथा आकालों के बावजूद, 1965 और 1971 में उन्होंने फिर जंगें लडी। इन घोषित खुली जंगों के अलावा, दोनो देश स्थायी जंग की स्थति में हैं और एक दूसरे के क्षेत्र में अप्रत्यक्ष जंग चलाते तथा आतंकवाद तथा अलगाववाद की आग भडकाते हैं। इस अर्थ में, गरीब तथा बदहाल आबादी के सिर पर सवार इन पूँजीवादी गिरोहों में यह "आम बात" लग सकती है।

पर ऐसा है नहीं। यह जंग प्रतिद्वन्दिता तथा विनाश की संभावनाओं के एक अभूतपूर्व स्तर पर पहुँच जाने का प्रतीक है। एक, मई 1998 से भारत तथा पाकिस्तान दोनो के पास न्युक्लियर शस्त्रागार हैं। दोनो के बीच युद्ध न्युक्लियर विनाश के एक तांडव में बदल सकता है जो दोनो देशों को नष्ट करके करोडों जानें ले सकता है। उपमहाद्वीप में इस युद्ध को नया आयाम देता और भी बडा कारक है गुटों के ढहन के बाद दुनिया में फैली आपाधापी। दुनिया की एकमात्र महाशक्ति के पास भी इसे रोकने के साधन सीमित हैं।

इन हालातों में इलाके में रत्त मुख्य राज्यों में तनाव तेज़ हुए हैं। मई-जून 1998 में ही भारत-चीन वाक्युद्ध में संलग्न थे और भारत चीन को दुश्मन नंबर एक करार दे रहा था। भारत तथा पाकिस्तान न्युक्लियर विस्फोटों की प्रतिस्पर्दा में लगे हुए थे। तब से इन सब में शत्रुता तेज़ ही हुई है।

कशमीर में मौजूदा युद्ध अपने प्रतिद्वन्दी भारत के खिलाफ पाकिस्तान की बढती हताशा की अभिव्यक्ति है। दोनो में पिछले साल के वाक्युद्ध के बाद यह चीन द्वारा भारतीय राज्य को लगाई गई किक का भी प्रतीक है। दूसरी और भारतीय पूँजीपति वरग हताश हो रहा है। वह पाकिस्तान के साथ एक "अन्तिम युद्ध" की "अवश्यंभाविता" का "विश्वास" आबादी में प्रचारित कर रहा है।

संभव है मौजूदा युद्ध न फैले। संभव है विश्वशक्तियों के मौजूदा हित उन्हें भारत पाकिस्तान, जो एक दूसरे की गर्दन पकडे हुए हैं, को एक दूसरे से अलग करने को मज़बूर कर दें। पर यह अस्थायी राहत होगी। भारत तथा पाकिस्तान, दोनों के शासक गिरोहों की बौखलाहट, उनकी शत्रुता की तीव्रता, चीनी पूँजीपति वरग की भारतीय महत्वाकांक्षाओं को नकेल लगाने की कटिवद्दता और दुनिया की मुख्य शक्तियों में प्रतिद्वन्दिता तथा आपाधापी, इस सब का एक नई जंग में फूट पडना लाजिमी है। मौत तथा विनाश के कहीं ऊँचे स्तर के साथ।

बुर्जूआज़ी जंग रोकने के नाकाबिल है। जंग पूँजीवाद की प्रकृति से पैदा होती है जो शोषण तथा पूँजीपतियों तथा राष्ट्रों में बेरहम टकरावों तथा प्रतिद्वन्दिता की एक व्यवस्था है। बुर्जूआ गिरोहों के बीच "शन्ति वार्ताएँ" नई, और भी जानलेवा जंगों की तैयारी की आढ भर हैं। भारत तथा पाकिस्तान में मौजूदा जंग, जो दोनों देशों के बीच तीन महीने पहले शान्ति के "सूत्रपात" के बाद भडकी, पूँजीपति वरग के शन्ति प्रचार के खोखलेपन का एक बढिया उदाहरण है।

एक वरग जिसका इन जंगों में कोई हित नहीं, मज़दूर वरग ही इन जंगों का अन्त कर सकता है। मज़दूर वरग ही जंग की कीमत अदा करता है। सीमाओं पर मरते सिपाही मज़दूरों, बदहाल किसानों तथा भूमिहीन मज़दूरों की संतान हैं, जिनमें से बहुतों ने दलालों को रिश्वत देकर सेना में नौकरियां खरीदी हैं। यह कारखानों, खदानों तथा दफ्तरों में मज़दूर ही हैं जिन्हें राष्ट्रवाद के नाम पर आर्थिक सख्ती स्वीकार करने पडेगी।

इराक में जंग की ही तरह, कोसोवो में जंग की ही तरह, पूँजीवादी राज्यों में आज तमाम साम्राज्यवादी जंगों की ही तरह, करगिल यद्ध में भी भारतीय तथा पाकिस्तानी मज़दूरों के पास चुनने के लिए कोई पक्ष नहीं। बचाव के लिए कोई राष्ट्र नहीं।

बातौर अन्तर्राष्ट्रीयतावादी, कम्युनिस्ट इस बात की पुष्टि करते हैं कि तमाम मौजूदा जंगों के समान, यह एक साम्राज्यवादी जंग है। वे पूँजीपति वरग द्वारा भडकाये राष्ट्रवादी उन्माद को खारिज करते हैं और मज़दूरों का आवाहन करते हैं के वे राष्ट्रवादी उन्माद में बहने से मना कर दें और अपने वरगीय हितों की हिफाजत करें। अपने देशों के पूँजीपति वरग के खिलाफ तथा विश्वपूँजी के खिलाफ निरन्तर फैलती एकजुटजा स्थापित करके और उसे राष्ट्रीय सीमाओं से परे फैलाकर। अपने वरग संघर्ष, वरग एकता तथा वरगीय चेतना को विकसित करके ही मज़दूर पूँजीवाद के विनाश का तथा तमाम जंगों के अन्त का राह खोल सकते हैं।

कम्युनिस्ट इंटरनेशनलिस्ट
भारत में आईसीसी का न्युक्लियस

आईसीसी पैंफलेट-ICC Pamphlets			
हिन्दी में	Rs.		Rs.
प्लेटफार्म एवम धोषणापत्र	10/-	यूनियनें मजदूर वर्ग के खिलाफ	12/-
राष्ट्र या वर्ग	12/-	पूँजीवाद की पतनशीलता	20/-
In English			
Platform Of the ICC	15/-	Nation Or Class	15/-
The Decadence Of Capitalism	25/-	Unions Against the Working Class	15/-
The Period Of Transition From Capitalism to Communism	30/-	Communist Organisations & Class Conciousness	30/-
The Italian Communist Left	120/-	Russia 1917 : Start Of the World Revolution	20/-
2nd Conference of Groups of the Communist Left,Vol I	80/-	2nd Conference of Groups of the Communist Left,Vol II	80/-

आईसीसी प्लेटफार्म बंगला में भी उपलब्ध है।

आईसीसी पैंफलेट प्राप्त करने के लिए निम्न पते पर लिखें :

Post Box No. 25
NIT Faridabad
PIN-121001, Haryana

चीन 1928-1949
साम्राज्यवादी युद्ध की जंजीर में एक कड़ी,भाग एक?

आधिकारक इतिहास मुताबिक 1948 में चीन में लोकप्रिय इंकलाब विजयी रहा। जनतंत्रवादी पश्चिम एवम माओवादी दोनों इस विचार के बराबर पक्षधर हैं। यह स्तालिनवादी प्रतिक्रांति जनित तथाकथित "समाजवादी देशों" की रचना विषयक विशाल भ्रमजाल का हिस्सा है। यह तय है कि 1919 और 1927 के बीच चीन महत्वपूर्ण मज़दूर आंदोलन में से गुज़रा जो उस दौर में पूंजीवादी दुनिया को हिलाती अंतर्राष्ट्रीय लहर का अभिन्न हिस्सा था। पर यह आंदोलन मज़दूर वरग के संहार द्वारा दबा दिया गया। पूंजीवादी प्रचारक जिसे "चीनी इंकालाब की विजय" के रुप में पेश करते हैं वह केवल राज्यपूंजीवादी शासन के माओवादी रुप की स्थापना थी। यह सर्वहारा क्रांति की हार के बाद 1928 से चीन में भडके साम्राज्यवादी युद्ध के दौर का चरम था।

इस लेख के पहले भाग में हम उन परिस्थितियों का खुलासा करेंगे जिनमें चीन में सर्वहारा इंकलाब पैदा हुआ। हम इससे कुछ मुख्य सबक निकालेंगे। दूसरा भाग साम्राज्यवादी संघर्षों के उस दौर को समर्पित है जिसने माओवाद को जन्म दिया। इसके साथ ही यह पूंजीवादी विचारधारा के इस रुप के बुनियादी पहलुओं का पर्दाफाश करता है।

तीसरा इंटरनेशल एवम चीन में क्रांति

कम्युनिस्ट इंटरनेशल (सीआई) का विकास और चीन में इसकी गतिविधि उस देश में क्रांति के रुख के लिये निर्णायक था। सीआई मज़दूर वरग द्वारा अपने क्रांतिकारी संघर्ष के मार्गदर्शन के लिए पारटी रचना के अभी तक के सर्वाधिक अहम प्रयास का प्रतीक है। पर इसका गठन लेट, विश्व क्रांतिकारी लहर के दोरान हुआ और राजनीतिक तथा संरचनात्मक रुप से सुदृड होने का इसे मौका नहीं मिला। फलत् क्रांति की पराजय तथा सोवियत रुस के अलगाव के रुबरु बोल्शेविक पारटी, जो इंटरनेशल की सबसे प्रभावशाली पारटी थी, ने डगमगाना शुरु किया। वह दो क्षोरों के बीच झूलने लगी – रुस में विजय का बलिदान तक देकर क्रांति के भावी नवीकरण का आधार बचाने की जरुरत; और क्रांति जनित रुसी राज्य को राष्ट्रीय बुर्जुआजी के साथ संधियों तथा गठजोडों, जो अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा के में भारी भ्रम का स्रोत्र और अनेक देशों में उसकी पराजय निकट लाने का समान बने, की कीमत पर जीवित रखने के बीच। इन तमाम परस्थितियों के रुबरु, वाम धडों के प्रतिरोध के बावजूद,(1) सीआई अवसरवादी भटकावों का शिकार हो गई। वरगों मे समझोते के वादों पर मज़दूर वरग के ऐतिहासिक हितों का त्याग इंटरनेशनल को उत्तरोत्तर पतन की और ले गया। 1928 में इसकी परिणिती "एक देश में समाजवाद के बचाव" के नाम पर सर्वहारा इंटरनेशनलिज्म के परित्याग में हुई। (2)

मज़दूर वरग में भरोसे की कमी इंटरनेशल को, जो निरन्तर रुसी सरकार के औज़ार में बदलती गई थी, साम्राज्यवाद महाशक्तियों की घुसपैठ के खिलाफ अवरोधों की खोज की और ले गई : पूर्वी यूरोप, मघ्य तथा सुदूर पूर्व के "उत्पीडीति देशों" के पूँजीपति वरग की सहायता द्वारा। अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर वरग के लिए इस नीति के परिणाम घातक निकले। तुर्की, इरान, फिलस्तीन, अफगानिस्तान और अन्त में चीन के तथाकथित "राष्ट्रीय" एवम "क्रांतिकारी" बुर्जुआज़ी ने पाखण्डपूर्ण तरीके से सीआई तथा रुसी सरकार की राजनीतिक तथा भौतिक सहायता स्वीकार की। पर उसने न तो साम्राज्यवादी महाशिक्तियों से और न ही अपने देशों के भूस्वामियों से, जिनके खिलाफ उसे संघर्षरत्त माना जा रहा था, संबंध तोडे। लिहाजा सीआई की नीति का नतीजा यह निकला कि इन देशों के पूँजीपति वरग ने रुस द्वारा सपलाई हथियारों से मज़दूर संघर्षों को कुचला और कम्युनिस्ट संगठनों को चकनाचूर कर दिया। विचारधारक तौर पर सर्वहारा नीतियों के इस परित्याग को तीसरे इंटरनेशल के दूसरे कांग्रेस के "उपनिवेशी तथा राष्ट्रीय सवाल पर थीसिस" (जिन्हे लिखने में लेनिन तथा राय ने केन्द्रीय भूमिका निभाई थी) की दुहाई देकर उचित ठहराया गया। निश्चय ही इन थीसिसों में अहम सिद्वांतक अस्पष्टता है। "साम्राज्यवाद" एवम "साम्राज्यवाद विरोधी" पूँजीपति वरग में उनका विभेद गलत था। इसने भारी राजनीतिक गलतियों की राह खोल दी; चूँकि इस युग में, दबे कुचले देशों में भी पूँजीपति वरग अब क्रांतिकारी नहीं रहा। उसने हर जगह "साम्राज्यवादी" चरित्र अख्तियार कर लिया है। बात केवल यही नहीं कि "दबे कुचले" देशों का पूँजीपति वरग इस या उस साम्राज्यवादी शक्ति से जुडा हुआ था। बल्कि रुस में मज़दूर वरग के सत्तासीन होने के बाद, इंटरनेशनल पूँजीपति वरग ने जनता के तमाम क्रांतकिारी आंदोलनों के खिलाफ एक सांझा मोरचा बना लिया। **पूँजीवाद अपनी मरणासन्न अवस्था में दाखिल हो गया था। सर्वहारा क्रांतियों के युग के सूत्रपात ने पूँजीवादी क्रांतियों के युग का पूरी तरह अन्त कर दिया था।**

इस गलती के बावजूद ये थीसिस अनेक अवसरवादी भटकाव, जो बदकिसमती से बाद मे आम हो गए, राकेने में समर्थ थे। लेनिन द्वारा पेश विचार विमर्श की रिर्पोट ने माना कि इस युग में "शोषक देशों और उपनिवेशों के पूँजीपति वरग में एक सहमति पैदा हो गई है। यद्यपि वे राष्ट्रीय आंदोलनों का समर्थन करते हैं, उत्पीडित देशों के पूंजीपति कई बार, शायद अधिकतर, साम्राज्यवादी बूर्जुआज़ी के संग एक सुनिश्चित सहमति के तहत तमाम क्रांतिकारी आंदोलनों तथा क्रांतिकारी वरगों के खिलाफ लड़ते हैं।"(3) इस लिए थीसिस मुख्यता किसानों में समर्थन की अपील करते हैं और, सर्वोपरि, वे कम्युनिस्ट संगठनों द्वारा पूँजीपति वरग के मुकाबले अपनी जीवन्त तथा सिदान्तनिष्ठ स्वतंत्रा बनाए रखने की जरुरत पर ज़ोर देते हैं। "कम्युनिस्ट इंटरनेशल का कर्त्तव्य है कि वह तमाम पिछडे. देशों में केवल भावी कम्युनिस्ट पारटियों –जो मात्र कथनी से नहीं कर्म से कम्युनिस्ट हों– के घटक बटौरने तथा उन्हें उनके विशेष कार्य, पूँजीवादी जनवादी रुझानों से लडाई के लिए प्रशिक्षत करने के लिए ही उपनिवेशों में क्रांतिकारी आंदोलनों का समर्थन करें .....यह जरुरी है कि वह हर हालात में सर्वहारा आंदोलन, चाहे वह कितने ही भ्रूण रुप में मोजूद हो, का स्वतंत्र चरित्र बनाए रखे"। पर चीन में इंटरनेशल द्वारा कोमिन्तांग के बेशर्त, निर्लज्ज समर्थन में यह सब भुला दिया गया : कि राष्ट्रीय पूँजीपति वरग अब क्रांतिकारी नहीं रहा था और साम्राज्यवादी ताकतों के साथ घनिष्ठ संबंध सथापित कर रहा था; कि जनवादी बूर्जुआजी के खिलाफ संघर्ष में समर्थ कम्युनिस्ट पारटी की रचना आवश्यक थी और मज़दूर आंदोलन की स्वतंत्रा अनिवार्य थी।

1911 की "पूँजीवादी" क्रांति तथा कोमिन्तांग

वीसवीं सदी के पहले दशकों में चीनी पूँजीपति वरग का तथा उसके राजनीतिक आंदोलन का विकास उसके तथाकथित "क्रांतिकारी" पहलुओं को प्रदर्शित करने की बजाए, पूँजीवाद के अपने पतन की अवस्था में दाखिले के साथ उसके क्रांतिकारी चरित्र के विलोप तथा उसके राष्ट्रीय एवम जनवादी आदर्श के एक भ्रमजाल में रुपान्तरण को चत्रित करता है। घटनाओं का अवलोकन हमें एक क्रांतिकारी वरग नहीं बल्कि एक रुढिवादी, समझौतावादी वरग दरसाता है जिसके राजनीतिक आंदोलन का लक्ष्य न तो कुलीनतन्त्र को पूरी तरह उखाड फेंकना और न ही "साम्राज्यवादियों" को खदेडना बल्कि उनके बीच में अपने को स्थापित करना था।

इतिहासकार आमतौर पर चीनी पूँजीपति वरग के धडों में विद्यामान विभिन्न हितों को रेखांकित करते हैं। अतः, सटोरिये/व्यापारी धडे, को आमतौर पर कुलीन वरग तथा "साम्राज्यवादियों" के साथ जोडा जाता है जबकि उद्योगिक बूर्जुआजी तथा वुद्विजीवी "राष्ट्रवादी", "आधुनिक", "क्रांतिकारी", गुट घठित करते हैं। वास्तव में अन्तर इतने स्पष्ट नहीं थे। बात यही नहीं कि दोनों गुट बिजनेस तथा पारिवारिक संबंधों से धनिष्ठ रुप से जुडे हुए थे बल्कि सर्वोपरि इसलिए

कि व्यापरी तबके की और उद्योगिक तथा वुद्विजीवी तबके की मनोवृति इतनी भिन्न नहीं थी। दोनो समर्थन के लिए निरन्तर युद्धसरदारों, जो कि भूस्वमियों के साथ जुडे हुए थे तथा महाशक्तियों की सरकारों की और देखते थे।

1911 तक मांचू राजवंश पहले ही पूरी तरह सड, चुका था और पतन के कगा्र पर था। यह कोई क्रांतिकारी राष्ट्रीय पूँजीवाद की गतिविधि का फल नहीं था। बल्कि महान साम्राज्यवादी ताकतों, जिन्होंने पुराने साम्राज्य को फाड डाला था, के हाथों चीन के विभाजन का नतीजा था। चीन युद्ध सरदारों द्वारा नियन्त्रित क्षेत्रों में निरन्तर बंटता गया था। ये बडी छोटी भाडे की सेनाओं के मालिक थे और सदा आपस में लडते रहते थे ताकि स्वयंको सबसे बडे खरीददार के हाथ बेच सकें। और इनके पीछे एक न एक महाशक्ति रहती थी। चीनी पूँजीपति वरग ने महसूस किया कि देश को एकजुट करते तत्व के रुप में राजवंश को विस्थापित करना जरुरी है। पर यह करते समय उनका लक्ष्य उत्पादन के उस ढांचे को, जिसमें उनके अपने हित भूस्वामियों के तथा "साम्राज्यवादियों" के हितों से जुडे हुए थे, तोडना नहीं बल्कि बनाए रखना था। तथाकथित "1911 की क्रांति" तथा "1919 के 4 मई आंदोलन" के बीच घटी घटनाएं इसी ढांचे में स्थित हैं।

"1911 की क्रांति" सनयात सेन के पूँजीवादी राष्ट्रवादी संगठन, तुंग मेंग हुई, द्वारा समर्थित रुढिवादी युद्ध सरदारों के एक षडयन्त्र के रुप में शुरु हुई। सम्राट को युद्ध सरदारों की योजनाओं की जानकारी नहीं थी। उन्होंने वुहान में एक नए शासन की सथापना की। सनयात सेन, जो अपने संगठन के लिए आर्थिक सहायता जुटाने के लिए अमेरिका में था, को वापिस बुला कर नई सरकार का प्रेसीडेन्ट बनने के लिए कहा गया। दोनों सरकारों में बातचीत आरंभ हुई। कुछ सप्ताहों में यह तय हुआ कि सम्राट तथा सनयात सेन दोनों रिटायर हो जाएं, और युआन शी काई, जो शाही सेनाओं के अगुआ तथा राजवंश के सच्चे बलशाली व्यक्ति थे, के नेतृत्व में एक एकीकृत सरकार उनका सथान ले। इसका अभिप्रय यह था कि राष्ट्र की एकजुटता बनाए रखने के लिए **पूँजीपति वरग ने तमाम "क्रांतिकारी" तथा "साम्राज्यवाद विरोधी" दिखावों को एक तरफ रख दिया था।**

1912 के अन्त में कोमिन्तांग (केएमटी) की स्थापना की गई; सनयान सेन का नया संगठन इस पूँजीपति वरग का प्रतिनिधित्व करता था। 1913 में कोमिन्तांग राष्ट्रपति चुनावों में शामिल हुआ जो सम्पत्तिधारी वरगों तक ही सीमित थे और जिनमें वे विजयी रहे। पर नया राष्ट्रपति सन चियाओ येन मारा गया। इसके बाद सनयात सेन ने एक नई सरकार के गठन के ध्येय से स्वयंको देश के मध्य दक्षिण के कुछ सैनिक उत्तराधिकारवादियों से जोड लिया, पर वह पीकिन्ग की शक्तियों द्वारा पराजित रहा।

हम देखते हैं कि चीनी पूँजीपति वरग के बेज़ान "राष्ट्रवादी" "युद्ध सरदारों" के और फलत् महाशक्तियों के खेलों के मोहताज, थे। **पहले विश्वयुद्ध के विस्फोट ने चीनी पूँजीपति वरग के राजनीतिक आंदोलन को साम्राज्यवादी हितों के और भी मातहत कर दिया।** 1915 में विभिन्न प्रदेशों ने स्वयंको "स्वतन्त्र" घोषित कर दिया, देश "युद्ध सरदारों", जिनके पीछे एक या दूसरी महाशक्ति खडी थी, में बांट लिया गया। उत्तर में जापान द्वारा समर्थित अन्फू सरकार प्रभुत्व के लिए ग्रेट ब्रिटेन तथा अमेरिका द्वारा समर्थित चिली सरकार से भिड रही थी। जारशाही रुस मंगोलिया को अपने आश्रित राज्य में बदलने की फिराक में था। दक्षिण को लेकर भी विवाद था, सनयान सेन ने कुछ युद्ध सरदारों से गठजोड बनाए। पीकिन्ग के शक्तिपुरुष की मौत से युद्ध सरदारों में संघर्ष और भी तीखा हो गया।

यही वह संदर्भ था जिसमें, यूरोप में पहले महायुद्ध के अन्त में, "1919 का मई 4 आंदोलन" घटित हुआ जिसे प्रचारक "सच्चा साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन" करार देते हैं। असल में यह निम्न मध्यवरगीय आंदोलन समूचे साम्राज्यवाद के नहीं बल्कि केवल जापान के खिलाफ था जिसने वारसिये कान्फ्रेंस (जिसमें "जनवादी" विजेताओं ने विश्व का पुन; बंटवारा किया था) में इनाम के तौर पर चीनी प्रान्त शान्तुंग हथिया लिया था। चीनी विद्यार्थी इसके खिलाफ थे। पर यह नोट करना जरुरी है कि चीनी क्षेत्र जापान को न सौंपने का लक्ष्य दूसरी साम्राज्यवादी ताकत – अमेरिका –के हित में था और अन्त में 1922 में उसीने शान्तुंग प्रान्त एकल जापानी प्रभुत्व से "मुक्त" कराया। यानि अपनी "उग्र" विचाराधारा के बावजूद मई 4 आंदोलन साम्राज्यवादी संघर्षों के दायरे में सीमित रहा। वह और कुछ कर भी नहीं सकता था।

दूसरी और यह इंगित करना जरुरी है कि मई 4 आंदोलन के दौरान मजदूर वरग ने पहली बार अपने प्रदर्शनों में अपनी अभिलाषएं की अभिव्यक्त की जिनमें न सिर्फ आंदोलन की राष्ट्रवादी मांगों को बल्कि खुद मजदूर वरग की मांगों को उठाया गया। यूरोप में पहले महायुद्ध का अन्त न तो युद्ध सरदारों में प्रतिद्विन्द्वों का और न ही देश के पुनः बंटवारे को लेकर महाशक्तियों में संघर्ष का अन्त कर पाया। धीरे धीरे दो कमोबेशी अस्थिर सरकारें उभरी : एक उत्तर में, युद्ध सरदार वू पी फू के नेतृत्व में, पीकिन्ग में स्तिथ; दूसरी दक्षिण में, केन्टन में स्थित, जिसके नेतृत्व में सनयात सेन और कोमिन्तांग को पाया जा सकता था। आधिकारक इतिहास बताता है कि उत्तरी सरकार कुलीन "प्रतिक्रिया" तथा साम्राज्यवादियों की प्रतिनिधि थी, जबकि दक्षिणी सरकार "क्रांतिकारी" तथा "राष्ट्रवादी" ताकतों, बूर्जुआजी, निम्न मध्यम वरग तथा मजदूरों का प्रतिनिधित्व करती थी। यह एक शर्मनाक भ्रमजाल है।

सच्चाई यह है कि सनयात सेन तथा कोमिन्तांग के पीछे सदा दक्षिणी युद्ध सरदारों का समर्थन रहता था। 1920 में युद्ध सरदार चेन चियुन्ग मिंग ने, जिसने केन्टन पर कब्जा कर लिया था, सनयात सेन को एक और सरकार गठित करने का निमन्त्रण दिया। 1922 में दक्षिणी युद्ध सरदारों के उत्तर की और बढने की काशिशों की पराजय के बाद, उसे सरकार से निकाल बाहर किया गया। पर 1923 में यूद्ध सरदारों ने केन्टन में उसकी वापिसी का समर्थन किया। दूसरी और सोवियत संघ के साथ कोमिन्तांग का गठजोड बहुचर्चित है। असलियत यह है कि सोवियत संघ ने चीन की सभी सरकारों, जिनमें उत्तरी सरकारें भी थीं, संग संधियां तथा गठजोड किये। जापान की और उत्तर के निश्चित रुझान के चलते ही सोवियत संघ ने सनयात सेन के साथ अपने संबंधों को विशेष दरजा दिया। दूसरी और सनयात सेन ने अन्य साम्राज्यवादी ताकतों की हिमायत हासिल करने के अपने प्रयास कभी नहीं छोडे। मसल्न, 1925 में, अपनी मौत से एन पहले, उत्तर के साथ बातचीत के लिये जापान से गुज्रते हुए सनयात सेन ने अपनी सरकार के लिये समर्थन की गुहार की।

यह पारटी, **कोमिन्तांग, जो साम्राज्यवादी महाशक्तियों तथा युद्ध सरदारों के खेलों में शामिल राष्ट्रीय पूँजीपति वरग (व्यापारिक, ओद्योगिक तथा वौद्विक) की प्रतिनिधि थी** कम्युनिस्ट इंटरनेशल की "हमदर्द पारटी" घोषित कर दी गई। चीन में कम्युनिस्टों को, "राष्ट्रीय क्रांति" की बलिवेदी पर एक न एक समय पर इसी पारटी की आधीनगी स्वीकार करनी पडी, जिसके लिए उन्होंने "कुलियों" (4) का काम किया।

चीन की कम्युनिस्ट पारटी चौराहे पर

आधिकारक इतिहास मुताबिक चीन में कम्युनिस्ट पारटी का विकास वीसवीं सदी के आरंभ में बूर्जुआ वुद्विजीवियों के आंदोलन का उपफल था। अन्य पश्चिमी "दर्शनों" के साथ साथ मार्क्सवाद भी यूरोप से आयात किया गया था, और कम्युनिस्ट पारटी की रचना इस दौर में अनेकानेक साहित्यिक, दार्शनिक तथा राजनीतिक संगठनों के उभार का हिस्सा थी। इस प्रकार के विचारों के साथ इतिहासकारों ने बूर्जुआजी के तथा मजदूर वरग के आंदोलन में एक पुल खोज निकाला है, उनके एक समान होने का आभास देते हुए, और इस प्राकर कम्युनिस्ट पारटी की रचना को एक विशिष्ट राष्ट्रीय चरित्र देते हुए। सच्चाई यह है कि चीन में कम्युनिस्ट पारटी की रचना **बुनियादी तौर पर चीनी वुद्विजीवियों के उभार के साथ नहीं, बल्कि मजदूर वरग के अन्तर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन की बढत के साथ जुडी हुई थी।**

चीन की कम्युनिस्ट पारटी (सीपीसी) 1920 और 1921 के बीच उन छोटे मार्क्सवादी, अराजकतावादी तथा समाजवादी ग्रुपों से गठित की गई जो सोवियत रुस से हमदर्दी रखते थे। अन्य अनेक कम्युनिस्ट पारटियों के समान, सीआई के एक अभिन्न अंग के रुप में सीपीसी का जन्म हुआ और इसकी उन्नति मजदूर संघर्षों के विकास के साथ जुडी हुई थी जो स्वयंभी रुस तथा पश्चिमी यूरोप के क्रांतिकारी आंदोलनों द्वारा पेश उदाहरणों का अनुसरण कर रहे थे। 1921 में कुछ दर्जन जुझारु थे, पर चन्द बरसों में उनकी संख्य हजारों में थी; 1925 की हडताली लहर के दौरान सदस्य संख्य 4000 हो गई, और 1927 के बगावती दौर तक यह 60000 तक पहुंच गई। यह भारी संख्यात्मक बढोतरी, एक तरफ, चीन में 1919 से 1927 के दौर में मजदूर वरग को आंदोलित करती क्रांतिकारी इच्छाशक्ति को अभिव्यक्ति करती थी (इस दौर के अधिकतर जुझारु बडे ओद्योगिक नगरों के मजदूर थे)। तो भी, यह कहना जरुरी है कि यह संख्यात्मक बढोतरी पारटी के उतने ही मजबूतीकरण को अभिव्यक्त नहीं करती थी। जुझारुओं का अतिजल्दबाजी में दाखिला, जनसंगठन के विपरीत, मजदूर वरग के एक ठोस, परखे हुए तथा अगुआ संगठन की रचना की बोल्शेविक पारटी की परंपरांओं के विपरीत था। पर सबसे खराब था उसकी दूसरी कांग्रेस द्वारा एक अवसरवादी नीति को अपनाना जिससे अपना पिंड छुडाने में वह अस्मर्थ रही।

1922 के मध्य में, इंटरनेशनल की कार्यकारिणी के आदेशों पर, सीपीसी ने "कोमिन्तांग के संग साम्राज्यवाद विरोधी संयुक्त मोरचे" का तथा कम्युनिस्टों के निजी स्तर पर उसमें शामिल होने का शर्मनाक नारा दिया। वरग सहयोग की यह नीति (जो जनवरी 1922 की "पूर्व के शोषितों की कांफ्रेंस" के बाद एशिया में फैलने लगी) सोवियत संघ तथा कोमिन्तांग में पहले से चल रही गुप्त बातचीत का फल थी। जून 1923 तक, सीपीसी की तीसरी कांग्रेस ने तमाम पारटी सदस्यों के कोमिन्तांग में दाखिले के पक्ष में वोट दिया। 1926 में स्वयं कोमिन्तांग को एक हमदर्द संगठन के रुप में सीआई में शामिल कर लिया गया और उसने सीआई के 7वें प्लेनरी सेशन, जिसमें त्रात्सकी तथा जिनोवियेव के संयुक्त विपक्ष को उपस्थित भी नहीं होने दिया गया था, में भाग लिया। 1926 में जब केएमटी मजदूर वरग के खिलाफ अपने आखिरी प्रहार की तैयारी कर रही थी, मासको में यह कुख्यात "सिद्वान्त" प्रतिपादित किया गया कि कोमिन्तांग चार वरगों का (सर्वहारा, किसान वरग, निम्न मध्यम वरग तथा पूँजीपति वरग) एक "साम्राज्यवाद विरोधी गुट" थी।

चीन में मजदूर वरग आंदोलन के लिए इस नीति के घातक परिणाम निकले। हडताल आंदोलन तथा प्रदर्शन यद्यपि स्वतस्फूर्त तथा प्रचन्ड रुप से उभरते रहे, कम्युनिस्ट पारटी, जिसका कोमिन्तांग में विलय हो गया था, कम्युनिस्ट जुझारुओं, जो बहुधा मजदूर संघर्षों की अगली कतारों में दिखाई देते थे, की अकाट्य वीरता के बावजूद मजदूर वरग को दिशा देने में, स्वतन्त्र वरग राजनीति प्रस्तुत करने में नाकाम थी। उसी प्रकार मजदूर कोंसिलों जैसे राजनीतिक संघर्ष के एकीकृत संगठनों से भी विहीन मजदूर वरग ने सीपीसी की मांग पर कोमिन्तांग, यानि पूँजीपति वरग पर भरोसा किया।

फिर भी, यह सुनिश्चित है कि कोमिन्तांग की आधीनगी की नीति को सीपीसी के भीतर निरन्तर विरोध का सामना करना पडा (चेन तूस्यू का रुझान इस विरोध की अभिव्यक्ति था)। दूसरे कांग्रेस से इंटरनेशल के प्रतिनिधि (स्नीवलीट) द्वारा रक्षित थीसिस, जिनके अनुसार केएमटी अब एक बूर्जुआ पारटी नही बल्कि वरगों का एक मोरचा थी जिसकी अधीनता स्वीकार करना सीपीसी के लिए जरुरी था, का पहले ही विरोध होता रहा था। कोमिन्तांग के साथ एकता के इस समूचे दौर में कम्युनिस्ट पारटी के अन्दर चियान्ग काईशेक की सर्वहारा विरोधी तैयारियों को नंगा करती अवाजें उठती रहीं; कहा गया कि सोवियत संघ द्वारा मुहैया हथियार मजदूरों और किसानों को मिलने चाहिऐ न कि चियान्ग की सेना को मजबूत करने के लिए, जैसा कि हो रहा था, और अन्त में कोमिन्तांग द्वारा मजदूर वरग के लिए पेश फन्दे से बाहर निकलने की जरुतर का स्वाल उठाया गया : "चीनी इंकलाब के दो रास्ते हैं : एक वह जिस पर सर्वहारा चल सकता है और जिससे हम अपने क्रांतिकारी लक्ष्यों को आगे बढा सकते हैं; दूसरा रास्ता है बूर्जुआजी का और यह अपने विकास में अन्ततः इंकलाब से विश्वासघात करेगा" (5)।

तो भी एक युवा तथा तजुरबाहीन पारटी के लिए इंटरनेशनल की कार्यकारिणी के गलत तथा अवसरवाद भरे निर्देशों पर पार पाना असंभव था और वह उनका शिकार हो गई। फलत् मजदूर वरग कोमिन्तांग को पीठ में छुरा घोंपने से नहीं रोक पाया। चूँकि जब कोमिन्तांग इसकी तैयारी कर रही थी सर्वहारा कोमिन्तांग विरोधी भूस्वामियों के खिलाफ संघर्ष मे घसीटा जा रहा था। यूँ चीन में इंकलाब को विजय के बहुत कम अवसर उपलब्ध थे, चूँकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व क्रांति की रीढ – जर्मन सर्वहारा –1919 से टूटी हुई थी। तीसरे इंटरनेशनल के अवसरवाद ने सिरफ पराजय ही पैदा की।

मजदूर वरग का उभार

माओवाद ने 1927 से गावों की और सीपीसी के पलायन को उचित ठहराने के लिए चीन में मजदूर वरग की कमजोरी को एक तर्क के रुप प्रयोग किया है। वीसवीं सदी के आरंभ में चीन में मजदूर वरग किसानी की तुलना में निश्चय ही नगण्य था (100 में से 2), पर उसका राजनीतिक बजन उसी अनुपात में सीमित नहीं था। यंगत्से नदी के किनारे, तटीय शहर शंघाई तथा वुहान के ओद्योगिक क्षेत्र (हांको–वुचांग–हान्यांग शहरों की त्रिमूर्ती) में अत्यन्त केन्द्रीकृत तथा केन्टन–हांगकांग कम्पलेक्स और हूनान प्रदेश की खदानों में करीब बीस लाख शहरी मजदूर थे (शहरों में बसते एक करोड से अधिक कमोबेश सर्वहाराकृत दस्तकारों को हम नहीं गिनते)। यह केन्द्रीकरण मजदूर वरग को पूँजीवादी उत्पादन के अहम केन्द्रों को पंगु बनाने तथा अपने नियन्त्रण तहत लेने की असाधरण संभव्यता प्रदान करता था। दक्षिणी प्रान्तों की किसानी भी मजदूर वरग से घनिष्ठता से जुडी हुई थी, चूँकि ओद्योगिक शहरों को मजदूर वही मुहैया करती थी, जो कि शहरी सर्वहारा के समर्थन की शक्ति घठित कर सकती थी।

इसके सिवा, देश में अन्य वरगों की तुलना में उसकी संख्य के आधार पर चीन में मजदूर वरग की ताकत का फैसला करना गलत होगा। सर्वहारा एक ऐतिहासिक वरग है जो अपनी शक्ति अपने अन्तर्राष्ट्रीय अस्तिव से हासिल करता है, और चीन में क्रांति का उदाहरण यह स्पष्ट दिखता है। हडताल आंदोलन का केन्द्र चीन में नही बल्कि यूरोप में था; यह विश्व इंकलाब की फैलती लहर की अभिव्यक्ति था। रुस में विजयी क्रांति तथा जर्मनी एवम अन्य यूरोपीय देशों में बगावत की कोशिशों के समक्ष चीन में मजदूरों ने, दुनिया के तमाम अन्य भागों के समान, स्वयं को संघर्ष में झोंक दिया।

चीन में अधिकतर कारखानों के मालिक चूँकि विदेशी थे शुरु में हडताल आंदोलन एक "विदेशी विरोधी" असर लिए था और राष्ट्रीय बूर्जुआजी ने सोचा वे विदेशी ताकतों पर दबाब डालने के लिए इसे प्रयोग कर सकते हैं। पर हडताल आंदोलन ने "देशी" तथा "विदेशी" मालिकों में कोई भेद न करते हुए समूचे पूँजीपति वरग के खिलाफ एक वरग चरित्र अख्तियार कर लिया। दमन के बवजूद (मजदूरों का सिर उडा देना अथवा उन्हें रेल इन्जन की भट्टी में जला देना असमान्य नहीं था) 1919 के उपरान्त मजदूर वरग की मांगों के लिए हडतालें विकसित हुई। 1921 के मध्य में हूनान में सूती मिलों में एक हडताल फूट पडी। 1922 के आरंभ में हांगकांग में नाविकों की तीन महीने की हडताल हुई जो तभी खतम हुई जब उन्होंने अपनी मांगें जीत ली। 1923 के आरंभिक महीनों में करीब 100 हडतालें हुई जिनमें 300000 से अधिक मजदूरों ने हिस्सा लिया; फरवरी में युद्ध सरदार वू पेई फू ने रेलवे हडताल के दमन का आदेश दिया जिसमें 35 मजदूर मारे गए, जख्मियों के अंगभंग कर दिये गए। जून 1924 में केन्टन/हांगकांग में तीन महीने की एक आम हडताल हुई। फरवरी में शंघाई के सूती मिल मजदूरों ने हडताल आरंभ की। यह उस विशाल हडताल आंदोलन की प्रस्तावना थी जो 1925 की गरर्मियों मे समूचे चीन में फैल गया।

30 मई आंदोलन

1925 में रुस ने केन्टन में कोमिन्तांग सरकार का पूरा समर्थन किया। पहले ही 1923 से सोवियत यूनियन तथा कोमिन्तांग के बीच गठजोड की खुली घोषणा हो चुकी थी, चियान्ग काईशेक की अगुआई में कोमिन्तांग का एक सैनिक शिष्टमण्डल मास्को जा चुका था, इसके साथ ही इंटरनेशनल के एक शिष्टमण्डल ने कोमिन्तांग को उसका विधान तथा संगठनात्मक एवम सैनिक ढांचा प्रदान किया। 1924 में, कोमिन्तांग की पहली आधिकारक कांग्रेस ने यह गठजोड स्वीकृत किया और मई में सोवियत हथियारों तथा सैनिक सलाहकारों के साथ, चियान्ग के निर्देशन में, वाम्पोओ सैनिक एकादमी सथापित की गई। असल में, रुस ने जो किया वह था कोमिन्तांग के गिर्द संगठित बूर्जुआ गुट की सेवा मे एक आधुनिक सेना का गठन जो तब तक इस से रहित था। मार्च 1925 में सनयात सेन ने वीजिन्ग (जिसकी सरकार के साथ सोवियत संघ अभी भी संबंध बनाए हुए था) की यात्रा की ताकि वह देश को एकीकृत करने के लिए एक गठजोड बना सके। पर अपना मकसद पूरा करने से पहली ही एक बिमारी से उसकी मौत हो गई।

रमणीय गठजोड का यही वह फ्रेमवर्क था जिसमें मजदूर वरग आंदोलन पूरी शक्ति के साथ फूट पडा। कोमिन्तांग के पूँजीपति वरग तथा इंटरनेशनल के अवसरवादियों को अन्तर्राष्ट्रीय वरग संर्घष की याद दिलाते हुए।

1925 के आरंभ से हडतालों तथा आंदोलनों की एक लहर उठ खडी हुई। 30 मई को शंघाई में अंग्रेज पुलिस ने मजदूरों तथा विद्यार्थियों के एक प्रर्दशन पर गोली चला दी। बीस प्रर्दशनकारियों कों मोत के घाट उतारते हुए। यह शंघाई में आम हडताल के लिए एक पलीता था जो तेजी से देश के मुख्य बंदरगाहों को फैल गई। 19 जून को केन्टन में भी एक आम हडताल फूट पडी। चार दिन बाद शमीन की ब्रिटिश रिआयत के ब्रिटिश सैनिकों ने एक और प्रर्दशन पर गोली चला दी। जवाब में हांगकांग के मजदूरों ने हडताल कर दी। आंदोलन फैलता गया और वीजिन्ग तक पहुँच गया जहां 30 जुलाई को 200000 मजदूरों का प्रर्दशन हुआ। कवांगतुन्ग के प्रांत में किसान आंदोलन गहरा गया।

शंघाई में हडताल तीन महीने चली। केन्टन तथा हांगकांग में एक हडताल/वायकाट की घोषणा कर दी गई जो अगले साल के अक्तूबर तक चला। यहां कामगार मिलीशिया का गठन आरंभ हो गया। चीन में मजदूर वरग ने पहली बार यह दिखा दिया कि वह समूची पूँजीवादी व्यवस्था को असल में ही खतरे में डालने में समर्थ एक शक्ति है। इसके बावजूद, "तीस मई आंदोलन" का एक नतीजा यह निकला कि केन्टन सरकार ने स्वयं को सुदृड कर लिया और दक्षिण की ओर अपनी शक्तिऐं बढा लीं। इस आंदोलन ने कोमिन्तांग में संगठित "राष्ट्रवादी" पूँजीपति वरग की वरग भावनाओं को झकझोर कर रख दिया। वह अभी तक हडतालों को "अपने हाल पर" छोडे था चूँकि वे मुख्यतः विदेशी कारखानों तथा रिआयतों की खिलाफ केन्द्रित थी। 1925 की गर्मियों में हडतालों ने आमतौर पर, राष्ट्रीय पूँजीपतियों के प्रति "सम्मान" को छोड कर, एक पूँजीवाद विराधी चरित्र अख्तियार कर लिया। अत:, "क्रांतिकारी" तथा "राष्ट्रवादी" बूर्जुआजी ने, महाशक्तियों द्वारा प्रोत्साहित तथा मास्को द्वारा अन्धे तौर पर समर्थित, कोमिन्तांग की अगुआई में स्वयं को अपने जानलेवा दुशमन –सर्वहार – से मुठभेड में झोंक दिया।

चियान्ग काईशेक द्वारा तख्तापल्ट तथा उत्तर की ओर अभियान

1925 के आखिरी तथा 1926 के आरंभिक महीनों में एक चीज घटित हुई जिसे इतिहासकार "कोमिन्तांग के वाम तथा द्वक्षिण पंथ में ध्रुवीकरण" करार देते हैं। उनके अनुसार इसमें शमिल है पूँजीपति वरग का दो गुटों में विभाजन, जिनमें से एक भाग "राष्ट्रवाद" के प्रति वफादार रहता है तथा दूसरा "साम्राज्यवाद" के साथ गठजोड की ओर बढता है। अतएव हमने पहले ही देखा है पूँजीपति वरग के अधिकतर "साम्राज्यवाद विरोधी" धडों ने "साम्राज्यवाद" से सौदेवाजी की कोशिशें कभी नहीं छोडी। असल में जो घटित हुआ वह पूँजीपति वरग का गुटों में विभाजन नहीं था, बल्कि वह मजदूर वरग के साथ मुठभेड के लिए उसकी तैयारी थी। वह था कोमिन्तांग के भीतर से अनावश्यक तत्वों (कम्युनिस्ट जुझारुओं, निम्न मध्यम वरग के कुछ हिस्सों तथा सोवियत संघ के प्रति वफादार कुछ जनरलों) को बाहर किया जाना। तब, कोमिन्तांग ने यह महसूस करते हुए कि उसके पास समुचित राजनीतिक तथा सैनिक शक्ति है, "चार वरगों के गठजोड" का नकाब फाड फेंका और अपने असली –पूँजीपति वरग की एक पारटी के– रुप में सामने आई।

1925 के अन्त में, "वाम गुट" का बास लियाओ चुन्ग काई मारा गया और कम्युनिस्टों का सताया जाना आरंभ हो गया। यह चियान्ग काईशेक द्वारा तख्तापल्ट की प्रस्तावना थी जिसने उसे कोमिन्तांग का "शक्तिपुरुष", सर्वहारा के खिलाफ पूँजीवादी प्रतिक्रिया आरंभ करने वाला व्यक्ति बना दिया। 20 मार्च को चियान्ग ने, वमपोआ सैनिक अकादमी के कैडिटों के समक्ष केन्टन में मार्शल ला की घोषणा कर दी; उसने मजदूर संगठनों को बन्द कर दिया, हडताली टुकडियों को निरस्त्र कर दिया तथा अनेक कम्युनिस्टों को गिरफ्तार किया। बाद के महीनों में, कम्युनिस्टों को केएमटी की तमाम जिम्मेवार पोजीशनों से हटा दिया।

इंटरनेशनल की कार्यकारिणी, जो पूरी तरह स्तालिन तथा बुखरिन के नियन्त्रण में थी, ने स्वयं को कोमिन्तांग की प्रतिक्रिया के प्रति अन्धी साबित किया। सीपीसी के विरोध के बावजूद उसने आदेश दिया कि गठजोड बरकरार रखा जाए और इन घटनाओं को इंटरनेशनल तथा कम्युनिस्ट परटियों के सदस्यों से छुपाया (6) । चियान्ग ने निर्लज्जता से मांग की कि उसका उत्तरी अभियान, जो उसने जुलाई 1926 में शुरु किया था, पूरा करने के लिये रुस उसकी सैनिक सहायता करे।

बूर्जुआजी के अन्य अनेक कृत्यों के समान, उत्तरी अभियान मिथ्या रुप से एक "क्रांतिकारी" घटना के रुप में पेश किया जाता है जिसका लक्ष्य "क्रांतिकारी" शासन को फैलाना तथा चीन को एकीकृत करना था। पर चियान्ग काईशेक की कोमिन्तांग के इरादे ऐसे नेक न थे। (अन्य युद्धसरदारों के समान) चियान्ग का सपना था शंघाई बंदरगाह पाना तथा महाशक्तियों से इसके समृद सीमाकर का प्रशासन हासिल करना। इस मकसद से उसने ब्लैकमेल के एक अहम तत्व का सहारा लिया : मजदूर आंदोलन को काबू में रखने तथा कुचलने की उकसी क्षमता।

जब कोमिन्तांग का सैनिक अभियान शुरु हुआ, अपने द्वारा नियन्त्रित इलाकों में उसने मार्शल ला घोषित कर दिया। अतः भ्रमित मजदूर उत्तर में जब केएमटी के समर्थन की तैयारी कर रहे थे, वह दक्षिण में मजदूर हडतालों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा रही थी। सितंबर में "वाम धडे" ने हांकाओ हासिल कर लिया, पर चियान्ग काईशेक ने उसका समर्थन करने से मना कर दिया और स्वयं को हांचांग में स्थापित किया। अक्तूबर में उसने कम्युनिस्टों को दक्षिण में किसान आंदोलन बन्द करने का आदेश दिया और सेना ने केन्टन/ हांगकांग हडताल तथा बायकाट आंदोलन समाप्त कर दिया। यह महाशक्तियों (खासकर ब्रिटेन) के लिये एक स्पष्ट संकेत था कि उत्तर की ओर कोमिन्तांग की बढत के इरादे "साम्राज्यवाद विरोधी" नहीं थे। और कुछ समय बाद चियान्ग के साथ गुप्त बातचीतें शुुरु हो गई।

1926 के अन्त से यंगत्जे के साथ साथ बसे औद्योगिक क्षेत्र आंदोलनों से खौल रहे थे। अक्तूबर में युद्धसरदार सिया चायो (जो अभी हाल ही में कोमिन्तांग में शामिल हुआ था) ने शांघई पर चढाई कर दी। पर उत्तर के "शत्रु" सैनिक दस्तों को (सन चुयान फेंग के नेतृत्व में) शहर में पहले घुसने तथा विद्रोह का गला घोंटने का मौका देने के मकसद से वह शहर से कुछ किलोमीटर की दूरी पर रुक गया। जनवरी 1927 में मजदूरों ने हानको (वुहान के त्रि–नगरों में) तथा जियूजियांग की ब्रिटिश रिआयतों पर स्वतर्स्फुत तौर पर कबजा कर लिया। तब, प्रतिकियावादी सेनायों की बेहतरीन परम्पराओं में, कोमिन्तांग फौजों ने अपनी बढत रोक दी ताकि स्थानीय युद्धसरदार मजदूरों तथा किसानों के आंदोलनों को कुचल सकें। इसके साथ ही,

चियांग ने कम्युनिस्टों पर सार्वजनिक तौर पर हमला किया और दक्षिण में कवांगतुंग में किसान आंदोलन कुचल दिया। यही वह दृश्य है जिसमें शंघाई के विद्रोही आंदोलन को स्थित करने की जरुरत है।

शंघाई विद्रोह

शंघाई का बगावती आंदोलन एक दशक के निरन्तर संघर्षों तथा मजदूर वरग के उभार का शिखर बिन्दू था। यह चीन में क्रांति द्वारा छुया उच्चतम बिन्दू था। ताहम, मजदूर वरग के लिए हालात बहुत कठिन थे। कम्युनिस्ट पारटी ने अपने आप को बिखरा, गिराया, मातहत बनाया तथा कोमिन्तांग द्वारा हाथ पांव बंधा पाया। "चार वरगों के मोरचे" में अपने भ्रमों द्वारा गुमराह मजदूर वरग अपने संघर्ष के केन्द्रीयकरण के लिए जरुरी कौंसिलों जैसे एकीकरण संगठन बना पाने में असक्षम रहा (7)। इस बीच, साम्राज्यवादी ताकतों की बन्दूकें शहर पर तनी हुई थी और कोमिन्तांग ने, जैसे वह शंघाई के निकट पहुँची, तथाकथित "साम्राज्यवाद विरोधी क्रांति" का झण्डा फहराया, जिसका असल मकसद मजदूरों को कुचालना था। इन हालात में मजदूर वरग का वह शहर, जो चीनी पूँजीवाद के दिल के सामान था, अधिकृत कर लेने, चाहे यह चन्द दिनों के लिए ही सही, की क्षमता की व्याख्या उसकी क्रांतिकारी इच्छाशक्ति तथा वीरता द्वारा की जा सकती है।

फरवरी 1927 में कोमिन्तांग ने फिर आगे बढना आरंभ किया। 18 तारीख तक नेशनलिस्ट सेनाऐं शंघाई से 60 किलोमीटर की दूरी पर जियाक्सिंग में थी। तब, सन चुयान फेंग की सन्निकट हार के आसार पर, शंघाई में एक आम हडताल फूट पडी : "शंघाई में 19 से 24 फरवरी तक का सर्वहारा आंदोलन वस्तुगत रुप से शंघाई में सर्वहारा प्रभुत्व सुदृड करने का एक प्रयास था। जेजियान्ग में सन चुयान फेंग की हार की पहली खबर मिलते ही, शंघाई में माहौल आग सा लाल हो उठा और दो दिन के अल्पकाल में, ***300000 मजदूरों का एक हडताल आंदोलन प्राकृतिक ताकतों की संभावना लिए फूट पडा। मजदूरों ने अबाध रुप से इसे एक सशस्त्र बगावत में रुपांतरित कर दिया जो नेतृत्व की कमी की बजह से कुछ हासिल नही कर पाया,,,,,,,"***(8)।

अचंभित, कम्युनिस्ट पारटी बगावत का नारा देने में हिचकचाती रही, जबकि गलियों में वह घट रही थी। 20 तारीख को चियान्ग काईशेक ने एक बार फिर शंघाई की ओर प्रगति को रोकने का आदेश दिया। यह सन चुयान फेंग की ताकतों के लिए फिलहाल आंदोलन काबू में लाने के लिए दमन शुरु करने का इशारा था, जिसमें दर्जनों मजदूर मारे गए।

आगामी हफ्तों में चियांग ने बहुत चालाकी से पैंतरेवाज़ी की ताकि वह सेना की कमांड से हटाये जाने से बच सके और "दक्षिणपंथ" और महाशक्तियों से अपने गठजोङ की तथा मजदूर वरग के खिलाफ अपनी तैयारी की अफवाहों को चुप करा सके।

अन्त में, 21 मार्च को निणार्यक बगावत का प्रयास हुया। उस दिन एक आम हडताल का ऐलान किया गया **जिसमें शंघाई के करीब सभी 80000 मजदूरों ने हिस्सा लिया।** *"समूचा सर्वहारा हडताल पर था, और ऐसे ही निम्नमध्यम वरग (दुकानदार, दस्तकार आदि) ,,,,,चन्द मिनटों में सारी पुलिसफोरस निहत्थी कर दी गई थी। दो बजे तक विद्रोहियों के पास पहले ही 1500 राईफलें थी। फौरन बाद विद्रोही फौजें सरकारी इमारतों के खिलाफ वढीं और उन्होंने फौजों को निरस्त्र कर दिया। चापी इलाके में गंभीर मुठभेडें हुई।,,,,अन्त में, दोपहर के चार बजे, दूसरे दिन शत्रु (करीब 3000 सैनिक) निश्चित तौर पर पराजित कर दिया गया। इस दीवार के ढहने के बाद* **समूचा शंघाई (रिआयतों तथा इंटरनेशनल मोहल्लों को छोड कर) विद्रोहियों के हाथ में था"** (9)। यह कार्यावाही, रुस में इंकलाब तथा जर्मनी तथा अन्य यूरोपी देशों में क्रांतिकारी कोशिशों के बाद, विश्वपूँजीवादी व्यवस्था पर एक और चोट थी। इसने मजदूर वरग की तमाम क्रांतिकारी संभावनों को उजागर कर दिया। ताहम, बूर्जुआजी का दमन तंत्र पहले ही सक्रिय था और सर्वहारा उससे टक्कर लेने की स्थिति में नहीं था।

"क्रांतिकारी" बूर्जुआजी द्वारा सर्वहारा का नरसंहार

मजदूरों ने शंघाई पर कब्जा तो किया, पर केवल शहर का द्वार कोमिन्तांग की राष्ट्रीय "क्रांतिकारी" फौज के लिए खोलने के लिए, जो अन्त में शहर में दाखिल हो गई। ज्यों ही उसने स्वयं को शंघाई में सथापित किया, चियांग काईशेक ने मजदूरों के दमन की तैयारी शुरु कर दी और सट्टेबाज बूर्जुआजी तथा अपराध जगत के गिरोहों के साथ सहमति कर ली। इसी प्रकार उसने महाशक्तियों के प्रतिनिधियों तथा उत्त्तरी युद्ध सरदारों के समीप आना शुरु किया। 6 अप्रैल को चांग त्सो लिन ने (चियांग की सहमति से) पीकिन्ग में रुसी दूतावास छापा मारा और कम्युनिस्ट पारटी के जुझारुओं को गिरफ्तार कर लिया जिन्हें बाद में मार डाला गया।

12 अप्रैल को चियांग द्वारा संगठित एक विशाल तथा खूनी दमनचक्र शंघाई में बरपा किया गया। गुप्त संस्थाओं से लुम्पन सर्वहारा गिरोह, जो सदा हडताल तोडकों का काम करते रहे थे, मजदूरों के खिलाफ छोड दिये गए। कोमिन्तांग के फौजी, मजदूरों के तथाकथित दोस्त, मजदूरों को निहत्था तथा गिरफ्तार करने के सीधे काम लाये गए। सर्वहारा ने आम हडताल की घोषणा करके अगले दिन जवाब देने का प्रयास किया, पर प्रदर्शनकारियों के समूह रास्ते में फौजियों द्वारा पकङ लिए गए। नतीजा बहुत सारी मौतें निकला। फौरन मार्शल ला लागू कर दिया गया तथा मजदूर संगठनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। चन्द दिनों में पांच हजार मजदूर मारे जा चुके थे जिनमें बहुत सारे कम्युनिस्ट परटी के जुझारु थे। महीनों तक छापे तथा हत्याऐं चलती रहीं।

इसी समय, एक संयोजित कार्यवाही में, केन्टन में रह गई कोमिन्तांग की फौजों ने एक और कतलेआम छेड दिया तथा हजारों और मजदूरों को मौत के घाट उतार दिया गया।

सर्वहारा इंकलाब शंघाई तथा केन्टन के मजदूरों के खून में डुबो दिये जाने के बाद, अभी भी प्रतिरोध बाकी था, खासकर वुहान में। पर यहां भी कोमिन्तांग और खासकर उसके "वामपंथ" ने अपना "क्रांतिकारी" मुखौटा उतार फेंका और जुलाई में चियान्ग से जा मिला। यहां भी दमनचक्र छेड दिया। इसी प्रकार मध्य तथा दक्षिणी प्रदेशों के गांव में विनाश तथा नरसंहार के लिए फौजी झुण्डों को खुला छोड दिया गया। समूचे चीन में कतल मजदूरों की संख्य दसियों हजारों में थी।

इंटरनेशनल की कार्यकारिणी ने, पूरी जिम्मेदारी सीपीसी तथा उसके केन्द्रीय निकायों पर, खासकर इस नीति का ठीक ही विरोध करनेवाले रुझानों (चेनत्सू हस्यिू का रुझान) पर डाल कर, वरग समझौते की अपनी घिनौनी तथा मुजरिमाना नीति पर परदा डालने की कोशिश की। यह काम पूरा करने के लिए उसने पहले ही कमजोर तथा पस्तहिम्मत कम्युनिस्ट पारटी को एक दुस्साहसपूर्ण नीति पर चलने का आदेश दिया। इसका नतीजा था तथाकथित "केन्टन की बगावत"। यह अनर्गल "नियोजित" तख्तापल्ट प्रयास केन्टन के मजदूर वरग द्वारा समर्थित नहीं था। और इसने पाया केवल बढा हुआ दमन। व्यवहारिक रुप से यह चीन में मजदूर आंदोलन के अन्त का सूचक था। आगामी चालीस साल तक इससे वह इतना नहीं उभर पाया कि कोई अहम कदम उठाये।

चीन के प्रति इंटरनेशनल की नीति स्तालिनवाद के उभार की वामपंथी विपक्ष (त्रात्सकी के रुझान ने अन्ततः चेन तूहस्यिू को अपने में मिला लिया) की निन्दा का केंद्र थी। तीसरे इंटरनेशनल के पतन के विरोध का यह एक पछेता तथा उलझा हुआ रुझान था। यद्यपि चीन के संदर्भ में जब उसने क्रांति के पतन की बजह के तौर पर सीपीसी की कोमिन्तांग की मताहती को नंगा किया, वह स्वयं को सर्वहारा धरातल पर बनाए रख सका, पर राष्ट्रीयता के सवाल पर इंटरनेशनल की दूसरे कांग्रेस के थीसिस के भ्रामक ढांचे से वह स्वयं को कभी मुक्त नहीं करवा पाया। और यह अपने आप में, उसे अवसरवाद की ओर ले जाने का एक कारक था (बिडम्बना देखिए, तीस के दशक के अंतरसाम्राज्यवादी टकराव के दौरान त्रात्सकी ने चीन में नए वरग मोरचे का समर्थन किया)। तब दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान वह प्रतिक्रांति के कैंप में दाखिल हो गया (10)। जो भी हो, चीन में अब जो भी अंतर्राष्ट्रीयतावादी बचे थे

"त्रात्सकीवादी" कहलाये (बरसों तक माओ त्सेतुंग, उसकी प्रतिक्रांतिकारी नीति का अभी भी विरोध करते बचे खुचे अंतर्राष्ट्रीयतावादियों को *"जापानी साम्राज्यवाद के त्रात्सकीवादी दलाल"* कह कर दमन करता रहा)।

कम्युनिस्ट परटी शब्दशः मिटा दी गई थी। 25000 के करीब कम्युनिस्ट कोमिन्तांग के हाथों मारे गए। शेष या तो बन्दी या दमन का शिकार बनाए गए। कोमिन्तांग की कुछ टुकडियों के साथ, कम्युनिस्ट पारटी के अवशेष गांव की ओर पलायन कर गए। पर यह भौगोलिक स्थानान्तरण और भी गहन राजनीतिक स्थानान्तरण से मेल खाता था। आगामी बरसों में पारटी ने एक बूर्जुआ नीति अपनाई। उसका सामाजिक आधार –जिसका नेतृत्व निम्न मध्यम वरग तथा बूर्जुआजी कर रहे थे, प्रधानतः किसान था और अंतर बूर्जुआ सैनिक अभियानों में शारीक होता था। चीनी कम्युनिस्ट पारटी, नाम बनाए रखने के बावजूद, मजदूर वरग की पारटी नहीं रही थी। वह एक बूर्जुआ संगठन में बदल दी गई थी। पर यह एक ऐतिहासिक सवाल है जिससे इस लेख के दूसरे भाग में निपटा जाएगा।

*****

बातौर निष्कर्ष, हम चीन में क्रांतिकारी आंदोलन द्वारा उभारे कुछ सबक निकालना चाहते हैं :

* ऐसा नहीं कि चीनी बूर्जुआजी केवल तभी से क्रांतिकारी नहीं रहा जब उसने मजदूर वरग के खिलाफ धावा बोला। पहले ही "1911 की क्रांति" से लेकर, "राष्ट्रवादी" बूर्जुआजी ने भूस्वामियों के संग सत्ता में साहभागिता की, युद्धसरदारों के साथ खुद को जोडने की तथा स्वयं को साम्राज्यवादी ताकतों के माताहत करने की अपनी तत्परता प्रमाणित कर दी थी। उसकी "जनवादी", "साम्राज्यवाद विरोधी" और यहां तक कि "क्रांतिकारी" आकांक्षाएं उसके प्रतिक्रियावादी हितों, जो तब नंगे हो गए जब सर्वहारा ने एक खतरा पेश करना शुरु किया, को छुपाने के लिए परदे के सिवा कुछ नहीं थी। पूँजीवाद के पतन के दौर में कमज़ोर देशों का पूँजीपति वरग उतना ही प्रतिक्रियावादी तथा साम्राज्यवादी है जितना अन्य ताकतों का।

*चीन में सर्वहारा के 1919 से 1927 के बीच के वरग संघर्ष की व्यख्या केवल राष्ट्रीय संदर्भ में नहीं की जा सकती। यह बीसवीं सदी के आरंभ में पूँजीवाद को झकझोरती विश्वक्रांति की लहर में एक कडी था। विश्व सर्वहारा के उस वक्त "कमज़ोर" समझे जाने वाले एक हिस्से,चीन में मजदूरों का आंदोलन जिस प्राकृतिक ताकत से उभरा, उसने स्वतस्फुत्र तौर पर उन्हें विशाल शहरों को अपने हाथों में लेने के समर्थ बनाया। और वह बूर्जुआज़ी का तख्ता पल्टने, यद्यपि इसके लिए क्रांतिकारी चेतना तथा संगठन की जरुरत है, की मजदूर वरग की समर्थता प्रदर्शित करता है।

*सर्वहारा पूँजीपति वरग के किसी भी गुट के साथ गठजोड बनाने से कोई वास्ता नहीं रख सकता। ताहम, उसका क्रांतिकारी आंदोलन शहरी तथा देहाती निम्न मध्यमवरग के भागों को अपने पीछे खींच सकता है (जैसे शंघाई विद्रोह तथा कवांगतुन्ग किसान आंदोलन ने दिखाया)। फिर भी, यह जरुरी है कि सर्वहारा अन्य तबकों के संगठनों में, किसी प्रकार के "मोरचे" में, अपने संगठनों का विलय न करे। इसके उल्ट, उसे अपनी वर्ग स्वायत्तता हर वक्त बनाए रखनी है।

*विजयी होने के लिए, सर्वहारा को एक राजनीतिक पारटी की, जो निर्णायक घडियों में उसका निर्देशन करती है, उतनी ही जरुरत है जितनी उसकी एकता को फौलादी बनाते कौंसिल टाईप के संगठनों की। विशेषकर, मजदूर वरग के लिए स्वयं को, वक्त रहते, आगामी अन्तर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी लहर के उफान से पहले, एक विश्व कम्युनिस्ट पारटी से लैस करना जरुरी है जो सिद्वान्तों की पक्की तथा संघर्ष में तपी हुई हो। क्रांतिकारी पांतों में अवसरवाद, जो फौरी "नतीजों" की बेदी पर क्रांति का भविष्य बलिदान कर देता है और वरग सहयोग की ओर ले जाता है, के खिलाफ सतत संघर्ष जरुरी है।

लियोनार्डो (आई आर–81)

1) इस लेख के संदर्भ में हम इंटरनेशनल में वामपंथी धडों द्वारा अवसरवाद तथा पतन के खिलाफ चलाए संघर्ष, जो उसी वक्त घटित हुआ जब हमारे द्वारा यहां वर्णित चीन की घटनाऐं, के मुद्दे को नहीं उठा सकते। जहां तक हमारी जानकारी है, अकेले वामपंथी ही थे जिन्होंने इतालवी वाम समेत समूचे "विरोधपक्ष" द्वारा हस्ताक्षरित घोषणापत्र जारी किया। यह था "चीन के तथा समूची दुनिया के कम्युनिस्टों के नाम" घोषणापत्र जो <u>ला वेरिटी</u> में 12 सितंबर 1912 को प्रकाशित हुआ। इस सिलसिले में, हम अपनी किताब ***इटालियन कम्युनिस्ट लेफ्ट*** तथा डच वाम पर ***इंटरनेशनल रिव्यू*** में प्रकाशित लेखों की श्रृंखला का सुझाव देते हैं।

2) यह पतन क्रांतिजनित राज्य के पतन के समान्तर था जो राज्य पूंजीवाद के उसके स्तालिनवादी रुप में पुर्नगठन की ओर ले गया। देखें, "आईसीसी की 9वीं कांग्रेस का घोषणापत्र"।

3) लेनिन – कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस के राष्ट्रीय तथा उपनिवेशी कमिशन की रिपोर्ट, 27 जुलाई 1920 और राष्ट्रीय तथा उपनिवेशी सवाल पर दूसरे कांग्रेस के थीसिस। पाथफाईन्डर बुक्स द्वारा 1977 में प्रकाशित ***दि सेकण्ड कांग्रेस आप दि कम्युनिस्ट इंटरनेशनल***, भाग एक से उदृत।

4) उक्ति बोरडिन की है; 1926 में चीन में वह ईटरनेशनल का नुमन्यदा था। ई एच कार, **सोशलिज्म इन वन कंट्री**, भाग 3।

5) चेन तू हस्यि। "सीपीसी के सभी सदस्यों के नाम" अपने दिसंबर 1929 के पत्र में उसी द्वारा उदृत। पहले ही उदृत रचना ***चीन का सवाल,*** पृष्ठ 446 से लिया।

6) कुछ ही दिन पूर्व चियान्ग काईशेक इंटरनेशनल का "आनरेरी सदस्य" तथा कोमिन्तांग एक "हमदर्द पारटी" करार दी गई थी। तख्तापल्ट के बाद भी, रुसी सलाहकारों ने दक्षिण के मज़दूरों व किसानों को 5000 राईफलें देने से मना कर दिया और उन्हें चियान्ग की सेना के लिए रिजर्व रखा।

7) चीन के क्रांतिकारी आंदोलन में यूनियनों द्वारा अदा रोल बाबत बहुत कुछ कहा जा चुका है। यह तय है कि इस काल में यूनियनें हडतालों के अनुपात में बढीं। तो भी, उन्होंने जहां तक आंदोलन को मूलभूत आर्थिक मांगों के चौखट में बनाए रखने का प्रयास नहीं किया, उनकी नीति कोमिन्तांग के मातहात थी (वे स्पष्टतः सीपीसी द्वारा प्रभावित भी थीं)। यूँ शंघाई में आंदोलन का घोषित लक्ष्य था "राष्ट्रवादी" सेना के लिए गेट खोलना। दिसंबर 1927 में कोमिन्तांग यूनियनों ने मज़दूरों के दमन में हिस्सा लिया। जिस हद तक मज़दूरों के पास जनसंगठन का यूनियनें ही एकमात्र चारा थीं, यह फायदे की बजाए एक कमज़ोरी की बात थी।

8) चीन में सीआई मिशन के तीन मेम्बरों द्वारा शंघाई से 17 मार्च 1927 का खत।

9) ए न्यूवर्ग, ***दि आमर्ड इन्ज़रेक्शन***। यह किताब 1929 के (इंटरनेशनल की छठी क्रांग्रेस के बाद) आसपास लिखी गई थी। इसमें इस दौर की घटनाओं संबंधी कुछ कीमती जानकारी है। पर यह विद्रोह को तख्तापल्ट के रुप में देखती है; अतएव यह स्तालिनवाद की भोंडी वकालत है। दूसरी ओर, यह अशचर्यजनक नहीं लगना चाहिए कि इतिहास की किताबों में –वे चाहे "पश्चिम पंथी" हों अथवा "माओवादी" – तथा माओवादी गुटकों में शंघाई विद्रोह का, अपने साईज़ तथा खूनी दमन के बावजूद, बढी मुश्किल से कहीं जिक्र है (अगर उसे पूरी तरह छुपाया नहीं गया)। केवल इसी अधार पर यह भ्रम बरकरार रखा जा सकता है कि 20वें की घटनाएं एक "बूर्जुआ इंकलाब" थीं।

10) त्रात्सकी तथा त्रात्सकीवाद पर हमारी पोज़ीशन की पूरी समझदारी के लिए देखें हमारा पैंफलेट ***त्रात्सकीवाद मज़दूर वरग के खिलाफ***।

चीन 1928-1949
साम्राज्यवादी युद्ध की जंजीर में एक कड़ी, भाग दो

इस लेख के पहले भाग (इंटरनेशनल रिव्यू नंबर 81) में हमने चीन में मजदूर वरग के सच्चे क्रांतिकारी तजरुबे को पुनरहासिल करने का प्रयास किया। शंघाई सर्वहारा का 21 मार्च 1927 का वीरोचित प्रयासित विद्रोह चीन में मज़दूर वरग के 1919 से आरंभ स्वतसफुर्त आंदोलन का चरम भी था और 1917 से दुनिया को हिलाती झकझोरती अंतरराष्ट्रीय क्रांतिकारी लहर की आखिरी चमक भी।

पर, पूंजीवादी प्रतिक्रिया की संयुक्त ताकतों –कोमिन्तांग, ''युद्धसरदार'', तेज़ी से पतति होते तीसरे इंटरनेशनल की कार्यकारिणी की मिलीभगत से साम्राज्यवादी महाशक्तियां – ने आंदोलन को पूरी तरह परास्त कर दिया।

इसके बाद की घटनाओं का सर्वहारा क्रांति से कोई वास्ता नहीं था। आधिकारिक इतिहासकार जिसे ''लोकप्रिय चीनी इंकलाब'' कहते हैं, असल में, प्रतिद्वन्दी पूंजीवादी गुटों के बीच देश के नियन्त्रण के लिए बेलगाम संघर्षों की एक श्रंखला थी जिसके पीछे सदा एक न एक महाशक्ति को पाया जा सकता था। चीन साम्राज्यवादी टकरावों, जो दूसरे महायुद्ध में परवान चढ़े, के ''उग्रतम'' क्षेत्रों में से एक में तबदील कर दिया गया।

सर्वहारा पारटी का खात्मा

1928 का साल, जिसे आधिकारक इतिहासकार चीनी कम्युनिस्ट पारटी के जीवन के एक निर्णायक साल के रुप में चिन्हित करते हैं, ''लाल सेना'' की रचना का तथा किसानी की लामबन्दी पर आधरित ''नई रणनीति'', ''लोकप्रिय क्रांति'' की तथाकथित आधारशिला के आरंभ का साल था। वास्तव में ही यह सीपीसी के लिए निर्णायक था यद्यपि उस अर्थ में नहीं जो आधिकारक इतिहासकारों का है। तथ्य यह है, **1928 के साल ने मज़दूर वरग के औज़ार के तौर पर चीन की कम्युनिस्ट परटी की मौत को चिन्हित किया।** इस घटना को समझना चीन की भावी घटनाओं को समझने का प्रस्थान बिन्दू है।

एक तरफ, सर्वहारा की हार के साथ पारटी तोड दी तथा चूर कर दी गई। जैसे हमने पहले ही जिक्र किया है, करीब 25000 कम्युनिस्ट जुझारु मार डाले गए तथा हज़ारों अन्य कोमिन्तांग द्वारा दमन का शिकार बनाए गए। ये जुझारु महानगरों के क्रांतिकारी सर्वहारा के सर्वोतम अंश थे, जो कौंसिल टाईप के संगठनों की गैरहाज़िरी में पूर्व बरसों में पारटी में पुनरगठित हो गए थे। अब से, न केवल मज़दूर वरग का कोई नया हिस्सा पारटी से जुडने वाला नहीं था, बल्कि, जैसे कि हम नीचे देखेंगे, उसकी सामाजिक संरचना अमूल रुप से बदल गई थी और यही बात उसके सिद्वान्तों की थी। पारटी का समापन मात्र संगठनात्मक नहीं बल्कि, सर्वोपरि, राजनीतिक था। कम्युनिस्ट पारटी के खिलाफ कठोरतम दमन का काल रुस में तथा इंटरनेशनल में स्तालिनवाद के बेरोक चढाव का भी काल था। इन समकालिक घटनाओं ने अवसरवाद के उस उभार को ड्रामाई रुप से तीव्रतर कर दिया जो बरसों से इंटरनेशनल की कार्यकारिणी द्वारा सीपीसी को पढ़ाया जा रहा था, जब तक कि वह तीव्र पतन की एक प्रक्रिया में नहीं बदल गया। इस प्रकार, अगस्त तथा दिसंबर के बीच पारटी ने एक के बाद एक कई सारी अविवेचित, हताश तथा आराजकतापूर्ण सशस्त्र बगावतों का नेतृत्व किया। इस ''पतझड़ विद्रोह'' में शामिल थीं : पारटी के प्रभावाधीन कुछ इलाकों में हज़ारों किसानों द्वारा सशस्त्र बगावत, ननचिन्ग में (यहां कुछ कम्युनिस्ट सक्रिय थे) राष्ट्रवादी फौजों में विद्रोह; और अन्त में 11/14 दिसंबर की तथाकथित केन्टन ''बगावत'', जो वास्तव में आक्रमण का ''योजनावद्ध'' प्रयास थी जिसे शहर के सर्वहारा के तमाम हिस्सों का सर्मथन हासिल नहीं था तथा जिसका अन्त एक और भारी रक्तपात में हुआ। इन सारी कार्यवाहियों का अन्त कोमिन्तांग के हाथों विनाशक हारों में हुआ। उन्होंने कम्युनिस्ट पारटी की बिखराव तथा हताश की प्रक्रिया को तीव्रतर कर दिया, और वे मज़दूर वरग की आखिरी क्रांतिकारी प्रवृतियों के कुचले जाने का सूचक थीं।

ये अविवेचित सशस्त्र बगावतें स्तालिन द्वारा सीपीसी की चोटी पर बिठाए तत्वों द्वारा उकसायी गईं थीं जिनका मकसद था ''चीनी क्रांति को प्रेरित करने'' के स्तालिन के थीसिस को उचित साबित करना। बाद में उसके विरोधियों को निष्कासित करने के लिए इन हारों का इस्तेमाल किया गया।

1928 का साल स्तालिनवादी प्रतिक्रांति की जीत का सूचक था। इंटरनेशनल के 9वें प्लेनम ने ''त्रात्सकीवाद के वहिष्कार'' को प्रवेश की एक शर्त के रुप में स्वीकार कर लिया। और, अन्ततः, इंटरनेशनल की 6ठी कांग्रेस ने ''एक देश में समाजवाद'' का कुख्यात सिद्वान्त पारित कर दिया। दूसरे शब्दों में सर्वहारा अंतर्राष्ट्रवाद का निश्चित परित्याग, जो मज़दूर वरग के एक संगठन के रुप में इंटरनेशनल की मौत का सूचक था। इस संदर्भ में, सीपीसी की 6ठी कांग्रेस ने, जो रुस में हुई, युवा नेताओं की एक टीम तैयार करने का फैसला लिया जो बिनाशर्त स्तालिन का समर्थन करे। यूं पारटी के ''आधिकारक'' स्तालिनवादीकरण का श्रीगणेश किया गया; दूसरे शब्दों उसका एक भिन्न पारटी में, उभरते रुसी साम्राज्यवाद के एक औज़ार में रुपांतरण। ''प्रात्यावर्तित विद्यार्थियों'' की इस टीम ने दो साल बाद 1930 में पारटी के नेतृत्व पर कबजा कर लिया।

''लाल सेना'' तथा आधुनिक ''युद्धसरदार''

स्तालिनवाद ही वह एकमात्र रास्ता नहीं था जो सीपीसी ने पतन की ओर अपनाया। 1927 के उत्तरार्ध में दुस्साहसों की श्रांखला की हार भी उनमें शामिल कुछ ग्रुपों को उन क्षेत्रों की ओर ले गई थी जो सरकारी सेनाओं की पहुँच से परे थे। इन ग्रुपों ने बृहतर सैनिक टुकडियों में एकजुट होना शुरु किया। इनमें से एक माओ का गुट था।

गौर करने की बात है कि एक जुझारु के रुप में अपने शुरुआती सालों से माओ ने कभी सर्वहारा सुदृडता का कोई सबूत नहीं दिया था। अवसरवादी धड़े के प्रतिनिध के रुप में, कोमिन्तांग के साथ गठजोड के दौर में वह गौण महत्व के एक प्रशासनिक पद पर रहा। जब गठजोड टूट गया तो वह अपने जन्म क्षेत्र हुनान की ओर भाग गया जहां स्तालिनवादी आदेशों के तहत, वह ''पतझड़ के किसान विद्रोह'' का नेतृत्व करने में जुट गया। इन दुस्साहसों के अनर्थकारी हश्र ने उसे, तथा हज़ारों किसानों को, और भी पीछे, जब तक वे चिन्गकांग के विशाल पर्वतों तक नहीं पहुंच गए, हटने को मज़बूर किया। वहां, स्वयं को जमाने के ध्येय से, उसने इलाके पर काबिज डाकूओं से समझौता कर लिया। उनके आक्रमण के तरीके उसने सीखे। अन्ततः उसका ग्रुप चू तेह के नेतृत्व में कोमिन्तांग के एक दस्ते के अवशेष में मिल गया जो पराजित नानचिंग विद्रोह से पहाड़ों को भाग गया था।

आधिकारक इतिहसाकारों के अनुसार, माओ का ग्रुप तथाकथित ''लाल सेना'' अथवा ''जन सेना'' तथा ''लाल क्षेत्रों'' (सीपीसी द्वारा नियिन्त्रत इलाकों) की जड़ में था। इस वृतांत अनुसार माना जाता है कि चीनी क्रांति की ''सही रणनीति'' की ''खोज'' माओ ने की। असलियत यह है कि माओ का सैनिक दस्ता दर्जनों अन्य क्षेत्रों में फैले अनेक दूसरों में से एक था। उन सभी ने किसानों की भरती, आक्रमणों तथा कुछ क्षेत्रों पर कब्जे का रास्ता अपनाया जो कुछ सालों (1934) तक कोमिन्तांग के प्रतिरोध की ओर ले गया। यहां याद रखने की अहम बात है सीपीसी के अवसरवादी धड़े का कोमिन्तांग के हिस्सों, जिनमें डिक्लास किसान गिरोहों द्वारा मुहैया भाड़े के सैनिक भी शामिल थे, में वैचारधारिक तथा राजनीतिक विलय। **वास्तव में, इस ऐतिहासिक परिदृश्य में शहरों से गांव की ओर घटित भौगोलिक विस्थापन मात्र रणनीति में बदलाव के अनुरुप नहीं था। अपितु, यह कम्युनिस्ट पारटी में आए वरग चरित्र के बदलाव का**

स्पष्ट धोतक था।

माओवादी इतिहासकार हमें बताते हैं कि ''लाल सेना'' सर्वहारा द्वारा मार्गदर्शित किसान सेना थी। असल में, इस सेना का नेतृत्व मज़दूर वरग नहीं बल्कि सीपीसी के सदस्य कर रहे थे, वे सभी निम्न मध्यमवरगीय पृष्ठभूमि से थे। इन तत्वों ने सर्वहारा परिदृश्य (जो क्रांतिकारी लहर की पराजय के बाद निश्चितरुप से त्याग दिया गया था) कभी अपनाया नहीं था। इन तत्वों में मिले हुए थे कोमिन्तांग के कटुताभरे अधिकारी। कुछ बरस बाद, प्रोफेसरों, विश्वविद्यालय छात्रों, राष्ट्रवादियों तथा उदार तत्वों के गांव की ओर एक नए पलायन द्वारा यह घालमेल और सुदृड हो गया। जापान के खिलाफ जंग में ये तत्व किसानों के ''शिक्षकों'' का गठन करने वाले थे।

सामाजिक तौर पर, **चीनी कम्युनिस्ट पारटी बूर्जुआजी तथा पैटी बूर्जुआजी की उन परतों के प्रतिनिधि में बदल दी गई** जिन्हें चीन में मौजूदा हालात ने पदच्युत कर दिया था : बुद्दिजीवी, व्यवसायी तथा पेशवर सैनिक जो न तो स्थानीय सरकारों, जो भूस्वामियों के अधीन थीं, में कोई जगह पा सके थे और न ही कोमिन्तांग की बंद दायरे की तथा एकाधिकारवादी केंद्रीय सरकार में।

परिणामतः, ''लाल सेना'' के नेतृत्व की विचारधारा स्तालिनवाद तथा सनयात सेनवाद का एक घालमेल बन गई। ''सर्वहारा'' बाबत छद्म मार्क्सवादी मुहावरों भरी भाषा च्यांगकाई शेक की ''तानाशाही'' के विरुध समान रुप से बूर्जुआ, यद्यपि ''जनतान्त्रिक'', एक दूसरी सरकार (''मित्र सरकारों'' द्वारा समर्थित) खड़ी करने के अधिकाधिक खुलेआम घोषित लक्ष्य को कठिनाई से ही छुपा पाती थी। पूंजीवाद पतनशीलता की असल दुनिया में इसका अर्थ था नई सीपीसी तथा उसकी ''लाल सेना'' को पूरी तरह साम्राज्यवादी संघर्षों में झोंक देना।

चीनी किसानी : एक विशेष क्रांतिकारी वरग

एक चीज़ तय है : ''लाल सेना'' की पांतें बुनियादी रुप से गरीब किसानों द्वारा गठित थीं। ''लोकप्रिय चीनी क्रांति'' के मिथक की रचना की जड़ में यही तथ्य है (पारटी के स्वयं को कम्युनिस्ट कहते रहने के सिवा)।

बीस के दशक के मध्य से सीपीसी के अंदर, विशेषकर मजदूर वरग में निम्नतम भरोसा रखने वालों के बीच, में पहले से ही वह सिद्वान्त विद्यमान था जो चीनी किसानी को एक विशेष क्रांतिकारी चरित्र प्रदान करता था। मसलन्, आपको यह पढने को मिलता है कि ''महान किसान अवाम अपने ऐतिहासिक मिशन की पूर्ति के लिए उठ खडा हुआ है : देहाती सामांतवाद की ताकतों को धराशायी करना'' (1)। दूसरे शब्दों में, वे किसानी को एक ऐतिहासिक वरग के रुप में देखते हैं जो दूसरे वरगों से आज़ादाना तौर पर विशेष क्रांतिकारी लक्ष्य हासिल करने के समर्थ है। सीपीसी के पतन के साथ ये सिद्वान्तीकरण और भी आगे निकल गए, उन्होंने चीनी किसानी को क्रांतिकारी संघर्षों में स्वयं को सर्वहारा के स्थान पर रखने के सक्षम बताया!(2)

चीन में किसान विद्रोहों के इतिहास की ओर इशारा करके, उन्होंने चीनी किसानी में एक क्रांतिकारी ''परंपरा'' (पर वे ''चेतना'' की बात नहीं करते) का अस्तित्व सिद्व करने का दावा किया। असल में, यह इतिहास ठीक यह सिद्व करता है कि चीनी किसानी के पास, शेष विश्व के किसानों के समान ही, कोई अपना व्यवहार्य क्रांतिकारी ऐतिहसिक प्रजेक्ट नहीं था,जैसा कि मार्क्सवाद ने बार बार सिद्व किया है। पूँजीवाद के चढाव के दौर में अधिकतर मामलों में उन्होंने बूर्जुआ इंकलाब का रास्ता खोला। **पर पूँजीवाद के पतन के दौर में गरीब किसान केवल तभी क्रांतिकारी संघर्ष चला सकते हैं ग़र वे सर्वहारा के क्रांतिकारी लक्ष्यों का पालन करते हैं, अन्यथा वे शासक वरग के एक औज़र में बदल दिये जाते हैं।**

मसलन्, ताइपेंग विद्रोह (चीनी किसानी का ''शुद्वतम'' तथा सबसे अहम संघर्ष जो 1850 में मांचू राजघराने के खिलाफ फूटा तथा 1864 में पूरी तरह कुचल दिया गया) ने पहले ही किसान संघर्ष की सीमाएँ सिद्व कर दी थीं। ताइपेंग धरती पर रामराज्य स्थापित करना चाहते थे, निजी संपत्ति से रहित एक सामाज जिसमें एक सच्चा सम्राट, एक सच्चा देवपुत्र, समुदाय की तमाम समृदियों का स्वामी होगा। **यानि यह समझ कि उनके तमाम दुखों की जड है निजी सम्पत्ति। पर इसका परिणाम भावी समाज की कोई व्यवहारिक परियोजना नहीं था, बल्कि था खोये हुए एक आदर्श राजवंश की ओर वापिसी का यूटोपिया।** आरंभिक सालों में यूरोपी ताकतो ने ताइपेंग को अपने हाल पर रहने दिया क्योंकि उसने राजघराने को अस्थिर कर दिया था तथा विद्रोह समूचे क्षेत्र में फैल गया। पर किसान एक केन्द्रीय सरकार बनाने तथा देश का प्रशासन चलाने के असक्षम थे। शाही राजधानी पीकिन्ग पर कबजा करने में असफलता के साथ आंदोलन 1856 में अपने चरम पर पहुँचा और, अन्त में, भारी दमन, जिसमें महान पूँजीवादी ताकतों ने हिस्सा लिया, द्वारा उसका भंजन आरंभ हो गया। इस प्रकार ताइपेंग विद्रोह ने मांचू राजघराने को कमज़ोर किया और केवल ब्रिटेन, फ्रांस तथा रुस के साम्राज्यवादी प्रसार के लिए द्वार खोला। **किसानी ने केवल बूर्जुआजी का काम किया (3)।**

दशकों बाद 1898 में एक नया, कम विस्तृत, विद्रोह फूट पडा – यी हो तुयान का बाक्सर विद्रोह। शुरु में यह राजघराने के तथा विदेशियों के खिलाफ था। तो भी, यह विद्रोह स्वतंन्त्र किसान आंदोलन के पतन का सूचक बना, साम्राज्ञी ने उस पर नियन्त्रण पा लिया तथा विदेशियों के खिलाफ अपनी लडाई में इसको इस्तेमाल किया। वीसवीं सदी के आरंभ में राजवंश के बिखराब तथा चीन के बिखंडन के साथ, गरीबों तथा भूमिहीन किसानों के इधर उधर मंडराते समूहों की बढती संख्या ने क्षेत्रीय ''युद्वसरदारों'' की पेशावर सेनाओं में भरती होना शुरु किया। अन्ततः, किसानों की रक्षार्थ गठित परंपरागत गुप्त संस्थाएँ पूँजीपतियों की सेवा में रत्त माफिया गिरोहों मे बदल गई। पूँजीपतियों ने उन्हें शहरों में श्रमिक दलों को काबू में रखने तथा हड़तालतोडकों के रुप में प्रयोग किया।

यह सही है कि किसानी के क्रांतिकारी चरित्र के सिद्वान्तीकरण ने किसान आंदोलन के, खासकर दक्षिण चीन में, प्रभावी पुनर सजीवन में अपना औचित्य पाया। परन्तु इन सिद्वान्तीकरणों में यह तथ्य नज़रअंदाज कर दिया गया कि यह पुनर सजीवन बडे शहरों में क्रांति द्वारा प्रेरित था और **किसानी की मुक्ति की तमाम आशाऐं शहरी सर्वहारा की विजयी क्रांति से जुडी हैं।**

परन्तु चीनी ''लालसेना'' के गठन का न तो सर्वहारा से, न इंकलाब से कोई वास्ता था। न ही, जैसे कि हसने कहा है, इसका बगावत के दौर में क्रांतिकारी पांतों की रचना से कोई लेना देना था। यह तय है कि किसानी द्वारा भोगी दुखद जीवन परिस्थितियों ने, उन्हे अपनी जमीन बचाने तथा जीतने की आशा से ''लाल सेना'' में शामिल होने की ओर धकेला। पर यही कारण अन्य किसानों को चीन में फैले युद्वसरदारों की सेनाओं में भरती की ओर ले गए।

असल में, ''लाल सेना'' के नेतृत्व को विजित क्षेत्रों को लूटने की मनाही का हुकम जारी करना पडा। ''लालसेना'' सर्वहारा के लिए एक पूर्णतः बाहरी चीज़ थी, जैसा 1930 में सामने आया, जब उसने महत्वपूर्ण शहर चांगशा पर कब्जा किया और केवल कुछ दिन तक ही उस पर नियन्त्रण रख पाई। इसकी बुनियादी बजह थी शहर के सर्वहारा द्वारा उसका, गर शत्रुतापूर्ण नहीं, तो उदासीन स्वागत। उसने एक नई ''बगावत'' द्वारा उसका समर्थन करने के आवाहन को ठुकरा दिया।

परंपरागत ''युद्वसरदारों'' तथा ''लालसेना'' के नेतृत्व में अन्तर यह था कि नए ''युद्वसरदारों'' ने स्वयं को पहले ही चीन के सामाजिक ढांचे में जमा लिया था और दृश्यतौर पर शासक वरग का अंग थे। जबकि द्वितीय को उसकी ओर राह बनाने के लिए संघर्ष करना पडा। इसने उन्हे किसानों की आशाएँ जगाने का मौका दिया और उन्हें एक अधिक गतिशील तथा आक्रमक चरित्र, गठजोड रचने तथा सबसे बडे साम्राज्यवादी खरीदार के हाथ स्वयं को बेचने में एक अधिक चतुर तथा लचीला रुख प्रदान किया।

संक्षेप में, 1927 में मजदूर वरग की हार ने किसानी को क्रांति के चरम पर नहीं पहुँचाया।

बल्कि, इसके विपरीत, उन्हें राष्ट्रवादी तथा साम्राज्यवादी संघर्षों के तुफान के थपेडों में लुढकने के लिये पटक दिया। इन संघर्षों में किसानों ने केवल गोलाबारुद का काम किया।

साम्राज्यवादी टकराव की मंजिल

मज़दूर वरग की हार के साथ, एक अल्पकाल के लिए, कोमिन्तांग चीन में सर्वाधिक शक्तिशाली संस्था बन गई। वह एकमात्र संस्था – क्षेत्रीय "युद्धसरदारों" के साथ गठज़ोड बनाती तथा तोडती – जो देश की एकता की गारंटी दे सकती थी। अतः वह साम्राज्यवादी ताकतों के झगडों के केन्द्र में बदल दी गई।

इस लेख के प्रथम भाग में हमने पहले ही जिक्र किया है कि कैसे 1911 से, राष्ट्रीय सरकार के गठन के संघर्ष के पीछे साम्राज्यवादी ताकतों को पाया जा सकता था। 1930 के दशक के आरंभ में उनमें शक्तियों का संतुलन विभिन्न तरह से परिवर्तित हो गया था।

एक तरफ, स्तालिनवादी प्रतिक्रांति ने एक नई रुसी साम्राज्यवादी नीति का सूत्रपात किया। सोवियत संघ की "समाजवादी पितृभूमि की प्रतिरक्षा" का अर्थ था उसके गिर्द एक प्रभाव क्षेत्र का निर्माण जो, इसके साथ ही, एक सुरक्षा बफर का भी काम करेगा। चीन के मामले में इसने 1928 के बाद से गठित "लाल क्षेत्रों" –स्तालिन की नज़र में इनका कोई भविष्य नहीं था– के समर्थन का और सर्वोपरि कोमिन्तांग सरकार के साथ गठजोड की खोज का रुप लिया।

दूसरी ओर अमेरिका, जो प्रशांत महासागर के तमाम निकटवर्ती इलाकों पर एकछत्र प्रभुत्व का अधिकाधिक दावेदार बनता जा रहा था, अपने बढते वित्तीय दबदबे के साथ ब्रिटेन तथा फ्रांस जैसी पुरानी ताकतों के पुराने उपनिवेशी प्रभुत्व की जगह ले रहा था। इसके अलावा, यह हासिल करने के लिए जरुरी था कि वह पहले जापान के विस्तारवादी सपनों से दो चार हो। असल में, वीसवीं सदी के आरंभ में यह पहले ही साफ हो गया था कि प्रशांत क्षेत्र इतना बडा नहीं कि जापान तथा अमेरिका दोनों को खपा सके। और चीन तथा कोमिन्तांग सरकार पर नियन्त्रण की लड़ाई के साथ (पर्ल हार्बर से दस साल पहले) जापान तथा अमेरिका में खुलेआम ठन गई।

अन्त में था जापान। चीन में सर्वाधिक दखलंदाजी करने वाली ताकतों में से एक। जिसकी बाजारों, कच्चेमाल के स्रोत्रों तथा सस्ते श्रम की बढती जरुरत उसे चीन में साम्राज्यवादी संघर्ष में पहलकदमी की ओर ले गई। सितंबर 1931 में उसने मंचूरिया पर कबजा कर लिया। और जनवरी से उसने चीन के उत्तरी प्रांतों पर आक्रमण करना शुरु किया। उसने शंघाई में अपना मोरचा बनाया, जिसके बाद उसने मज़दूर वरगीय क्षेत्रों तथा शहरों पर "निवारक" बम्बवारी शुरु की। जापान ने कुछ युद्धसरदारों के साथ गठजोड बनाए तथा अपनी कठपुतली सरकारें स्थापित करनी शुरु की। च्यांग काईशेक ने आक्रमण का नाममात्र विरोध किया चूँकि जापानियों के साथ उसने पहले ही संधि कर ली थी। तब अमेरिका तथा रुस ने प्रतिक्रिया की। प्रत्येक ने अपने स्वार्थ खातिर च्यांगकाई शेक सरकार पर दबाव डाला कि वह प्रभावशाली प्रतिरोध करे। पर अमेरिका ने चीजों को बहुत ठण्डे दिल से लिया। उसे आशा थी कि जापान चीन में एक लंबी तथा थकाऊ जंग पे उलझ जाएगा (असल में हुआ भी यही)।

अपनी जगह स्तालिन ने 1932 में "लाल आधारक्षेत्रों" को जापान पर जंग की घोषणा का आदेश दिया। साथ ही उसने च्यांगकाई शेक शासन से कूटनीतिक संबंध स्थापित किये, एन उस समय जब यह शासन "लाल क्षेत्रों" पर वहशियाना हमले कर रहा था। 1933 में माओ तथा फांग चिमिन ने कोमिन्तांग के उन जनरलों के साथ समझौते का सुझाव दिया जिन्होंने जापान के साथ गठजोड की च्यांग की नीति की बजह से उसके खिलाफ विद्रोह कर दिया था। परन्तु, "लौटे हुए विद्यार्थियों" ने इस समझौते को खारिज कर दिया ताकि रुस तथा च्यांग शासन के बीच संबंध न टूटें। यह घटना दिखाती है कि सीपीसी पहले ही अन्तर बूर्जुआ संघर्षों तथा समझौतों के खेल से बंधी हुई थी। इस वक्त स्तालिन "लालसेना" को मात्र बतौर एक "दवाब तत्व" देख रहा था। वह च्यांगकाई शेक के साथ चिरस्थायी गठजोड पर निर्भरता का अधिक पक्षधर था।

लांग मार्च - साम्राज्यवादी युद्ध की डगर पर

1934 की गर्मियों मे। बढते साम्राज्यवादी तनावों के इस परिप्रेक्ष्य में। दक्षिण तथा मध्य "गुरिल्ला क्षेत्रों" में आधारित "लाल सेना" की टुकडियों ने कोमिन्तांग के नियन्त्रण से दूर के देहाती क्षेत्रों की राह, उत्तर पश्चिमी चीन की और बढना शुरु किया। ताकि वे शेन्सी प्रदेश में इकट्ठी हो सकें। आधिकारिक इतिहासकारों के अनुसार "लांग मार्च" के रुप में मशहूर यह सफर "चीनी जन क्रांति" का सबसे अहम तथा महाकाव्यात्मक कदम था। इतिहास की किताबें वीरोचित वर्णनों से भरी पडी हैं कि टुकडियों ने कैसे नदियां, दलदली क्षेत्र तथा पर्वत पार किये। पर घटनाओं का विश्लेषण दिखाता है कि इस गमन के पीछे घिनोने पूँजीवादी हित छिपे हुए थे।

सर्वोपरि, **"लांग मार्च" का मुख्य मकसद था किसानों को** जापान, चीन, रुस तथा अमेरिका में सुलग रहे **साम्राज्यवादी युद्ध के लिए भरती करना**। असल में पो कू ("लौटे हुए विद्यार्थियों" के ग्रुप का एक स्तालिनवादी) ने पहले ही "लाल सेना" की कुछ टुकडियां जापानियों के खिलाफ लडने भेजने की संभावना पेश की थी। इतिहास की किताबें रेखांकित करती हैं कि कियांग्सी के दक्षिणी क्षेत्र के "लाल जोन" से गमन का कारण कोमिन्तांग की असहनीय घेराबन्दी थी। पर वे अस्पष्ट हो जाते हैं, जब इस तथ्य से उनका सामना होता है कि "लाल सेना" की ताकतों को निकाल बाहर करने की बजह, बडे हद तक, कार्यनीति में स्तालिनवादियों द्वारा थोपे बदलाव थे : गुरिल्ला संघर्ष, जिन्होंने बरसों तक "लाल सेना" को प्रतिरोध का मौका दिया था, से कोमिन्तांग पर आमने सामने के हमले की ओर बदलाव। इन मुठभेडों का नतीजा यह निकला कि गुरिल्ला जोन की सुरक्षा सीमा भेद दी गई और उन्हें त्यागना लाजिमी हो गया। यह कोई "लौटे हुए विद्यार्थियों" की "गंभीर गलती" नहीं थी (जैसे कि माओ ने, यद्यिप इस रणनीति में वह शारीक था, बाद में दावा किया)। स्तालिनवादियों की इस सफलता ने सशस्त्र किसानों को अपनी ज़मीन, जिसकी तब तक उन्होंने भारी प्रयास से रक्षा की थी, छोड उत्तर की ओर जाने तथा केवल आगामी युद्ध लायक नियमित सेना में गठित होने को मज़बूर किया।

इतिहास की किताबें "लांग मार्च" को आमतौर पर एक सामाजिक आंदोलन अथवा वरग संघर्ष का रुप देती हैं। आगे बढती "लाल सेना" "क्रांति के बीज बोती", प्रचार करती तथा चलते चलते किसानों में जमीनों का पुनरवितरण करती पेश की जाती है। असल में इन कदमों का मकसद था "लाल सेना" के पिछली पांतों की रक्षा के लिए किसानों को इस्तेमाल करना। पहले ही, "लांगमार्च" के शुरु में "लालक्षेत्रों" की जन आबादी पीछे हटती सेना की सुरक्षा के काम लायी गई थी। कुछ इतिहासकारों द्वारा "अति उम्दा" करार यह कार्यनीति जो नियमित सेना के गमन की सुरक्षा के लिए जनआबादी को निशाने में बदलने में निहित थी, असल में शासक वरग की सेनाओं की कार्यनीति थी। इतिहासग्रंथों के विपरीत, बच्चों तथा बूढों को मरने देना ताकि सेना स्वयं को बचा सके, इसमें कुछ भी वीरोचित नहीं।

"लम्बा सफर" वरग संघर्ष की राह पर नहीं था। इसके विपरीत, यह उन लोगों के साथ समझौतों तथा गठजोडों का रास्ता था जिन्हें तब तक "सामान्तवादी तथा पूँजीवादी प्रतिक्रियावादी" करार दिया जाता था और जिन्हें अब जैसे किसी जादू से "पक्के देश भक्तों" में बदल दिया गया था। यूँ पहली अगस्त 1935 को, जब "लांग मार्च" की टुकडियां सेचुयन में टिकी हुई थी, जापानियों को चीन से खदेडने के ध्येय से सीपीसी ने तमाम वरगों की राष्ट्रीय एकता का आवाहन किया। **दूसरे शब्दों में सीपीसी ने वरग संघर्ष त्यागने के लिए मज़दूरों का आवाहन किया ताकि वे अपने शोषकों के साथ एकजुट हो सकें, उनकी जंगों मे गोलाबारुद के काम आ सकें।** यह आवाहन सीआई की सातवीं तथा अंतिम कांग्रेस, जो इसी दौरान हुई, के प्रस्तावों का पूर्वानुमान था। इस कांग्रेस ने "फासीवाद विरोधी लोकप्रिय मोरचे" का नारा दिया था जिसकी मार्फत स्तालिनवादी पारटियों ने राष्ट्रीय पूँजीपति

वरग के साथ गठजोड किया और उन्हें पहले ही निकट आते दूसरे विश्व नरसंहार के लिए मज़दूरों के भरती ऐजण्टों में बदल दिया।

आधिकारक रुप से लांग मार्च अक्तूबर 1935 में, जब माओ की टुकडियां येनान (उत्तर पश्चिमी चीन में शेन्सी प्रांत) पहुँची, खतम हुआ। बाद के सालों में, माओवादी देवकुल में "लांग मार्च" माओत्से तुंग का शानदार एकल कार्य माना गया। आधिकारिक इतिहास इस तथ्य पर आंख मूँद लेते हैं कि माओ एक ऐसे "लालक्षेत्र" में पहुँचा जो पहले ही स्थापित था। और कि उसका आगमन एक हादसे का सूचक था। शुरु में कियांग्सी छोडने वाले 90000 लोगों में से केवल 7000 ही येनान पहुँच पाए। हज़ारों मारे गए (कोमिन्तांग हमलों की बजाए प्रकृति की मार से)। और अगुओ ग्रुपों मे लडाई की बजह से हज़ारों पीछे सेचूयान में बने रहे। युनान तथा सेचुयान की टुकडियों के आगमन के साथ 1936 के अन्त में जाकर ही कहीं "लालसेना" का बडा भाग असल में इकट्ठा किया जा सका।

कोमिन्तांग से सीपीसी का गठजोड

1936 से किसानों को भरती करने के सीपीसी के काम को उन सैंकडों राष्ट्रवादी छात्रों से समर्थन मिला जो 1935 के अन्त में बुद्दिजीवियों के जापान विरोधी आंदोलन के बाद देहातों को चले गए थे(4)। तात्पर्य यह नहीं के छात्र "कम्युनिस्ट" बन गए, इसके विपरीत, जैसे हमने उपर जिक्र किया, सीपीसी पहले ही एक ऐसा संगठन था जिसे पूँजीपति अपना मानते थे और जो उनके वरग हितों का साझीदार था।

पर जापानियों के विरोध के सवाल पर चीनी बूर्जुआजी एकमत नहीं था। इस या उस महाशक्ति की और झुकाव के सवाल पर उनमें विभाजन था। यह चियान्ग काई शेक द्वारा प्रतिबिम्बित था जो, जैसा हमने देखा है, जापानियों के खिलाफ खुला हल्ला बोलने बाबत असमंजस में था। उसने तब तक इंतजार करने का प्रयास किया जब तक साम्राज्यवादी शक्तियों का संतुलन इस या उस गिरोह के पक्ष में ना झुक जाए। कोमिन्तांग जनरल तथा क्षेत्रीय "युद्धसरदार" भी इसी तरह बंटे हुए थे।

तथाकथित "सियान प्रसंग" इसी वातावरण में घटित हुआ। दिसंबर 1936 में, एक जापान विरोधी कोमिन्तांगी, चांग हस्युलियांग तथा सियान के "युद्धसरदार" यांग हुचेन्ग ने, जिनकी सीपीसी से अच्छी बनती थी, चियान्ग को गिरफ्तार कर लिया। वे उसे गद्दार करार देकर सज़ा देने वाले थे। पर स्तालिन ने फौरन तथा ज़ोरदार तरीके से न सिरफ चियान्ग को मुक्त करने बल्कि उसकी ताकतों को "लोकप्रिय मोरचे" में शामिल करने का सीपीसी को आदेश दिया। आगामी दिनों में सीपीसी (यानि स्तालिन) के प्रतिनिधियों के रुप में चाऊ इन लाई, येह शिन्यिग तथा पो कू के बीच, बतौर अमेरिकी प्रतिनिधि तू सोंग (जो चीन में सबसे बडा तथा सबसे भृष्ट एकाधिकारवादी था) तथा स्वयं चियान्ग के बीच वार्तालाप हुए। इन समझौता वार्ताओं का नतीजा यह निकला कि चियान्ग अमेरिका तथा सोवियत संघ का पक्ष लेने को "मज़बूर" हुआ –इस वक्त अमेरिका तथा रुस जापान के खिलाफ एकजुट थे। इसके बदले में उसे राष्ट्रीय सरकार का अगुआ रहने दिया गया जबकि सीपीसी तथा "लाल सेना" (जिसने अब अपना नाम "आठवीं सेना" रख लिया) उसके नेतृत्व तले रख दिये गए। चाऊ इन लाई तथा दूसरे "कम्युनिस्ट" चियान्ग की सरकार में शामिल हो गए, जबकि अमेरिका तथा रुस ने चियान्ग को सैनिक समर्थन प्रदान किया। जहां तक चांग हस्यूलियान्ग तथा यांग हुचेन्ग का सवाल है, उन्हे चियान्ग के प्रतिशोध पर छोड दिया गया, प्रथम को कारावास में डाल दिया गया तथा दूसरा मारा गया।

यूँ सीपीसी तथा कोमिन्तांग में नए गठबंधन पर हस्ताक्षर हुए। केवल महाधिनौनी विचारधारक कलाबाजियों तथा अति धृणित प्रचार द्वारा ही सीपीसी चियान्ग, वह जल्लाद जिसने 1927 में सर्वहारा इंकलाब को कुचलने तथा दसियों हज़ार मज़दूरों तथा कम्युनिस्टों के कत्ल का आदेश दिया था, के साथ अपनी इस नई संधि को मज़दूरों की नज़र में जायज ठहरा पाई। यह सही है कि 1938 के मध्य से चियान्ग की अगुआई वाली कोमिन्तांग शक्तियों तथा "लाल सेना" के बीच नए सिर से लडाई छिड गई। यह आधिकारक इतिहासकारों को यह दावा करने का अवसर देता है कि कोमिन्तांग के साथ गठजोड "इंकलाब" में सीपीसी का एक "दांवपेच" था। पर इस गठजोड का ऐतिहासिक महत्व ना तो इसके टूट जाने में और ना सीपीसी तथा कोमिन्तांग में सहयोग में निहित है। वह है इस तथ्य में कि इन दो ताकतों के बीच कोई वरग शत्रुता नहीं थी, बल्कि, इसके विपरीत उनके वरग हित एक थे। सीपीसी का दूसरे दशक की उस सीपीसी से कुछ सांझा नहीं था जिसने पूँजी से टक्कर ली थी : अब यह पूँजी के एक औजार के सिवा, साम्राज्यवादी नरसंहार के लिए किसानों की भरती के नंबर एक अफसर के सिवा कुछ नहीं थी

बिलान : प्रतिक्रांति के अंधेरे में रोशनी की एक किरण

जुलाई 1937 में, जापानियों ने चीन के खिलाफ एक बडा हमला शुरु किया : यह चीन-जापान युद्ध का आरंभ था। प्रतिक्रांति से बचे चंद कम्युनिस्ट ग्रुप, जैसे डच इंटरनेशनलिस्ट कम्युनिस्ट ग्रुप अथवा फ्रांस में ***बिलान*** प्रकाशित करने वाला इतालवी वाम कम्युनिस्ट ग्रुप, ही इस तथ्य का पूर्वानुमान लगा पाए। और इसका पर्दाफाश कर पाए कि चीन की घटनाएँ कोई "राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष" नहीं थीं बल्कि इस क्षेत्र से जुडी ताकतों –जापान, रुस तथा अमेरिका– में प्रभुत्व की लडाई थी। और कि स्पेनिश ग्रहयुद्ध तथा अन्य क्षेत्रीय संघर्षों के समान चीन–जापान युद्ध दूसरे विश्व साम्राज्यवादी नरसंहार की कर्णभेदी भूमिका था। इसकी तुलना में त्रात्सकी का लेफ्ट अपोज़ीशन, जिसने 1928 में अपने गठन के समय कोमिन्तांग के साथ गठजोड की स्तालिन की अपराधपूर्ण नीति की निन्दा की थी और उसे चीन में सर्वहारा इंकलाब की हार का कारण बताया था, अब इतिहास की दिशा के अपने गलत विश्लेषण का बन्दी था। इसके चलते उसे हर क्षेत्रीय साम्राज्यवादी संघर्ष में एक नई क्रांतिकारी संभावना नज़र आई। अपने बढते अवसरवाद के बन्दी, उसने चीन–जापान युद्ध को "प्रगतिशील" तथा "तीसरे चीनी इंकलाब" की और एक कदम माना। 1937 के अन्त में, त्रात्सकी ने बेशर्मी से घोषणा की *"गर न्यायपूर्ण युद्ध जैसी कोई चीज़ है तो वह है चीनी जनता का विजेताओं के खिलाफ युद्ध .... चीन के तमाम मज़दूर वरगीय संगठन, चीन की सारी प्रगतिशील ताकतें अपने प्रोग्राम अथवा अपनी राजनीतिक आज़ादी में से कुछ भी खोए बिना, चियान्ग काई शेक की सरकार (5) के प्रति अपने रवैये के बावजूद, इस मुक्ति युद्ध में अपना कर्तव्य निवाने में कोई कसर उठा कर नहीं रखेंगी।"* राष्ट्रीय प्रतिरक्षा की इस अवसरवादी नीति के साथ, *"चियान्ग काईशेक की सरकार के प्रति अपने रवैये के बावजूद"*, त्रात्सकी ने साम्राज्यवादी जंग में अपनी सरकारों के पीछे मज़दूरों की भरती, और दूसरे महायुद्ध के साथ, पूँजी के भरती अफसरों में त्रात्सकीवादी ग्रुपों के रुपांतरण के द्वार पूरी तरह खोल दिए। इसके मुकाबले, इतालवी कम्युनिस्ट वाम के चीन के विश्लेषण ने मज़दूर वरग की अंतर्राष्ट्रयतावादी नीति का दृडता से पक्ष लिया। त्रात्सकी के लेफ्ट अपोज़ीशन से उसके संबंध टूटने में चीन विषयक पोज़ीशन एक अहम नुक्ता थी। ***बिलान*** के लिए *"चीन, स्पेन की घटनाओं तथा मौजूदा अन्तर्राष्ट्रीय हालात पर कम्युनिस्ट पोज़ीशन सर्वहारा के अन्दर काम कर रही उन तमाम ताकतों के कड़े उन्मूलन द्वारा ही तय की जा सकती है जो सर्वहारा को साम्राज्यवादी नरसंहार में भाग लेने की सलाह देते हैं"*(6)। *"समूची समस्या है यह तह करना कि युद्ध कौनसा वरग चला रहा है और उसी मुताबिक नीति निरधार्ति करना। मौजूदा मामले में, इस बात से इनकार नहीं किया सकता कि युद्ध चीनी बूर्जुआज़ी चला रहा है –और वह चाहे हमलावर हो या शिकार, सर्वहारा का कर्तव्य है चीन में, जितना कि जापान में, क्रांतिकारी पराजयवाद के लिए संघर्ष करना"*(7)। इसी अर्थ में, इंटरनेशनल कम्युनिस्ट वाम के बेलिज्यन फ्रेक्शन (जो ***बिलान*** से जुडा हुआ था) ने लिखा : *"केन्टन के जल्लाद च्यांग काईशेक के संगसंग, स्तालिनवादी भी "जंगे आज़ादी" के झण्डे तले चीनी मज़दूरों तथा किसानों के कतल में शरीक*

हैं। राष्ट्रीय मारचे से पूर्ण संबंध विछ्छेद, जापानी मजदूरों तथा किसानों से बिरादराने का उनका इज़हार, कोमिन्तांग तथा उसके तमाम संगियों से वरग पारटी की अगुआई में उनका गृहयुद्ध, केवल यही उन्हें विनाश से बचा सकता है''(9) एक पराजित तथा हताश मज़दूर वरग वाम कम्युनिस्टों की दृड आवाज़ सुनने में असफल रहा और उसने स्वयंको विश्वव्यापी मारकाट में धसीटा जाने दिया। पर विश्लेषण की इन ग्रुपों की पद्वित तथा उनकी पोज़ीशनें मार्क्सवाद के चिरस्थायित्व तथा उसके गहनीकरण की प्रतीक थी। उन्होंने पुरानी क्रांतिकारी पीढ़ी, जो वीसवीं सदी के आरंभ की क्रांतिकारी लहर में क्रियाशील रही थी, तथा नई क्रांतिकारी पीढी, जो सातवें दशक के अंत में प्रतिक्रांति के अंत के साथ पैदा हुई, में पुल का काम किया।

1937-1949 : सोवियत संघ के संग या अमेरिका के?

हम जानते हैं कि दूसरा विश्व युद्ध जापान तथा उसके संगियों की हार के साथ खतम हुआ। और इस हार का अर्थ था जापान का चीन से पूरी तरह पलायन। पर दूसरे विश्वयुद्ध के अंत का अर्थ साम्राज्यवादी टकरावों का अंत नहीं था। इसके फौरन बाद दो महाशक्तियों –सोवियत संघ तथा अमेरिका– में होड़ शुरु हो गई जो चालीस साल तक चली और जो विश्व को तीसरे –तथा आखिरी– विश्वयुद्ध के कगार पर ले आई। चीन तत्काल इन महाशक्तियों में टकराव के मैदान में बदल गया।

इस लेख का लक्ष्य है तथाकथित ''चीनी लोकप्रिय जनक्रांति'' के भ्रम को नंगा करना न कि चीन–जापान युद्ध के उतार चढ़ाव से जुडे विभिन्न प्रसंगों को पेश करना। पर ये मसले इन बरसों में सीपीसी द्वारा अपनाई नीतियों के दो पहलु रेखांकित करते हैं।

पहला 1936-1945 के बीच ''लाल सेना'' द्वारा अधिकृत क्षेत्र में द्रुत फैलाव से जुडा हुआ है। जैसा हमने जिक्र किया चियांग काईशेक ने अपनी शक्तियां सीधे जापानियों के खिलाफ नहीं उतारीं। जापानी बढत से सामना होने पर उसकी सेनाऐं लौट पडीं और पीछे हट गई। दूसरी ओर चीन के अंदरुनी भागों की ओर जापान की बढोतरी अधिकृत क्षेत्रों में अपना प्रशासन स्थापित करने की उसकी क्षमता द्वारा समर्थित नहीं थी। और जल्दी ही वे महत्वपूर्ण शहरों तथा संचार मार्गों का अधिगृहण करने तक सीमित हो गए। इस स्थिति ने दो वाक्यात को जन्म दिया : प्रथमतः क्षेत्रीय युद्ध सरदार या तो केन्द्रीय सरकार के प्रति वफादार रहे पर उससे अलग थलग पड गए और उन्होंने कठपुतली सरकारें बनाने में जापानियों से सहयोग किया। या आक्रमण का मुकाबला करने में उन्होंने ''लाल सेना'' का साथ दिया। **दूसरा, सीपीसी ने जापानी आक्रमण से उत्तर पश्चिम चीनी देहात में पैदा सत्ता की रिक्तता का चालाकीपूर्ण इस्तेमाल अपना प्रशासनतन्त्र स्थापित करने के लिए किया।**

''नए जनतन्त्र'' के रुप में परिचित यह प्रशासन इतिहासकारों द्वारा एक ''नए प्रकार'' के ''जनवादी'' प्रशासन के रुप में प्रशंसित किया जाता है। इसमें नयापन मात्र यह था कि इतिहास में पहली बार **एक ''कम्युनिस्ट'' पारटी ने वरग सहयोग की सरकार की स्थापना की थी। (9) कहने का अर्थ है, वह पूँजीपतियों तथा बडे भूस्वामियों के हितों, यानि शोषण के स्थिर संबंधों की बरकरारी की जी जान से हिफाज़त के लिए चिन्तित थी।** सीपीसी ने पाया किसानों का समर्थन हासिल करने के लिए ज़मीन का अधिगृहण तथा किसानों में उसका वितरण जरुरी नहीं था। किसान उगाहियों से इस बुरी तरह दबे हुए थे कि टैक्सों में *मामूली* कमी (असल में इतनी मामूली कि भूस्वामी तथा पूँजीपति उससे सहमत हुए) ही किसानों को स्वेच्छा से सीपीसी प्रशासन स्वीकार करवाने तथा ''लाल सेना'' में भरती करने के लिए काफी थी। इस ''नई शासन प्रणाली'' के अनुरुप सीपीसी ने (बूर्जुआज़ी, भूस्वामियों तथा किसानों के बीच) वरग सहयोग की एक सरकार भी स्थापित की, जो ''तीन भागों की सरकार'' के रुप में मशहूर थी। इसमें एक तिहाई पद ''कम्युनिस्टों'' के पास, एक तिहाई किसान संगठनों के पास तथा एक तिहाई पद भूस्वामियों एवम बूर्जुआज़ी के पास थे। एक बार फिर, माओत्से तुन्ग जैसे ''सिद्वान्तकारों'' की केवल अति अद्यम वैचारधारिक कलाबाजियों द्वारा ही सीपीसी मज़दूरों को इस ''नए प्रकार'' की सरकार की व्याख्या कर पाई।

सीपीसी की नीति का दूसरा पहलु उतना ख्यात नहीं है, चूँकि माओवादी तथा अमेरिका समर्थक, दोनों वैचारधारिक कारणों से इसे छिपाना चाहते है। **निम्न कारणों से सीपीसी मज़बूती से अमेरिका की और झुक रही थीः**

- –यूरोपीय युद्ध में सोवियत संघ के फंसे होने का अर्थ यह था कि कुछ सालों तक उसके लिए सीपीसी की गंभीर मदद कर पाना कठिन था;
- –1938 से, विश्वयुद्ध के किसी फैसलाकुन परिणाम की आशा में, च्यांगकाई शेक का नए सिरे से अमेरिका तथा जापान में डोलना;(10)
- –अमेरिका का 1941 से प्रशान्त महासागर की जंग में शामिल होना।

1944 से अमेरिकी सरकार ने येनान के ''लाल क्षेत्र'' में अपना अवलोकन मिशन स्थापित किया ताकि सीपीसी और अमेरिका में सहयोग की संभावनाओं का पता लगाया जा सके। सीपीसी के नेता –खासकर माओत्से तुन्ग और चू तेह गुट मानते थे कि युद्ध के अन्त में अमेरिका सबसे ताकतवर विजयी शक्ति के रुप में उभरेगा। और वे उसकी ताकत का सहारा लेना चाहते थे। इस मिशन के एक ऐजण्ट जान सर्विस का पत्र व्यवहार इस बात की और पुरज़ोर ईशारा करता है कि सीपीसी के नेता कह रहे थेः

- –कि सीपीसी सोवियत सरकार की स्थापना की बहुत कम संभावना देखती थी। उससे भी बढ कर, वह चीन में पश्चिम की तरज़ का ''जनतन्त्र'' स्थापित करना चाहती थी, कि वह च्यांगकाई शेक के साथ साझा सरकार की पक्षधर थी ताकि जापान के साथ जंग के अन्त में गृहयुद्ध से बचा जा सके;
- –कि सीपीसी के मत से, इससे पहले कि चीन में समाजवाद की स्थापना की बात सोची जाए, दशको के पूँजीवादी विकास की जरुरत थी। और कि ग़र वह घडी आन भी पहुँची तो यह बहुत धीरे धीरे किया जाएगा न कि हिंसका अधिगृहणों द्वारा। कि इस बजह से एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए सीपीसी विदेशी, खासकर अमेरिकी, पूँजी के लिए ''खुले दरवाज़े'' की नीति अपनाऐगी।
- –कि एक तरफ सोवियत संघ की कमज़ोरी, दूसरी और च्यांगकाई शेक के भ्रष्टाचार एवम जापानियों की और उसके झुकाव को देखते हुए सीपीसी अमेरिका के राजनीतिक, वित्तिय तथा सैनिक समर्थन की इच्छुक थी। कि सहायता पाने के लिए सीपीसी अपना नाम बदलने (जैसा ''लालसेना'' के साथ उसने पहले ही किया था) की सोच सकती है।

संयुक्त राज्य मिशन के सदस्यों ने ज़ोर दिया कि भविष्य सीपीसी के पक्ष में है। पर संयुक्त राज्य ने ''कम्युनिस्टों'' के समर्थन का फैसला नहीं लिया। और अन्त में, एक साल बाद 1945 में, जापान की हार से पहले, रुस ने तेज़ी से उत्तरी चीन पर हमला कर दिया। और यूँ, सीपीसी तथा माओ के पास सोवियत संघ के साथ जुड़ने (अस्थायी रुप से!) सिवा कोई चारा नहीं था।

***

1946 से 1949 तक दो महाशक्तियों के बीच टकराव का सीधा परिणाम था सीपीसी तथा कोमिन्तांग के बीच युद्ध। युद्ध के दौरान कोमिन्तांग के शेष जनरल अपने हथियारों तथा सैनिकों के साथ ''जनप्रिय शक्तियों'' के साथ मिल गए। इस तरह हम चार उत्तरोतर मंजिलें देखतें हैं जिनमें बूर्जुआज़ी तथा निम्न मध्यम वरग ने सीपीसी को पालापोसा : 1928 से मज़दूर वरग की हार के बाद की मंजिल; 1935 के छात्र आंदोलन में आधारित मंजिल; जापान के खिलाफ युद्ध का दौर और अन्त में कोमिन्तांग के पतन द्वारा प्रेरित मंजिल। च्यांगकाई शेक से सीधे जुडे सूंग जैसे महान एकाधिकारियों को छोड, ''पुराने'' बूर्जुआज़ी का सीपीसी में विलय हो गया और उसने युद्ध के दौरान पनपे नए बूर्जुआजी को जन्म दिया।

1949 में चीन की कम्युनिस्ट पारटी ने लाल सेना की अगुआई में सत्ता संभाली तथा जनता के लोकतन्त्र की घोषणा की। पर इसका कम्युनिज्म से कभी कोई वास्ता नहीं था। चीन में सत्तासीन

हुई "कम्युनिस्ट" पारटी का वरग चरित्र कम्युनिज्म के पूरी तरह उल्ट था और मज़दूर वरग के खिलाफ था। शुरु से शासन राज्य पूँजीवाद का ही एक रुप था। सोवियत संघ बडी मुश्किल से एक दशक तक ही चीन को कंट्रोल कर पाया और इसका अन्त दोनों देशों में संबन्ध विच्छेध से हुया। 1960 से चीन महाशक्तियों से स्वतन्त्र एक खेल खेलता रहा। अपने आप को वह "तीसरा गुट" खडा करने में समर्थ एक ताकत के रुप में देखता था, यद्यिप 1970 से वह निश्चित तौर पर अमेरिकी प्रभाव वाले पश्चिमी गुट की ओर झुक गया। बहुत से इतिहासकारों ने, खासकर रुसियों ने, माओ पर गद्दार होने का आरोप लगाया। अब हम जानते हैं कि अमेरिका की ओर चीन का सफर माओ का विश्वासघात नहीं बल्कि उसके सपनों का साकार होना था।

एलडीओ, इंटरनेशनल रिव्यू नंबर-84

1). "हूनान में किसान आंदोलन पर खोज की रिपोर्ट"। मार्च 1927। *माओ त्सेतुंग की संग्रहीत रचनाओं में,* बीजिन्ग 1976।
2). कुछ साल बाद, इस्साक डूशर, अन्य के अलावा, इस अनर्गल नतीजे पर पहुँचा कि ग़र पूँजीपति वरग के पदच्युत हिस्से तथा शहरी निम्न मध्यम वरग कम्युनिस्ट पारटी की अगुआई कर सकें, तो कोई बजह नहीं कि एक "समाजवादी" क्रांति में किसान सर्वहारा का स्थान ना ले सकें। (*माओवाद, उसका उदय तथा भविष्य। चीनी सांस्कृतिक क्रांति, 1971*)
3). किसी व्यवहार्य ऐतिहासिक परियोजना की अनुपस्थिति एक आम विशेषता है जो सभी महान किसान आंदोलनों में पाई जाती है (मसलन् 16वीं सदी में जर्मनी में जंग, ताइपिन्ग विद्रोह, दक्षिण में 1910 का "मैक्सीक्न इंकलाब") : अपने समुदायिक चरित्र के बावजूद उनकी काल्पनिक विचारधारा एक अनपल्ट रुप से गुज़री हुई सामाजिक स्थिति की पुनरस्थापना का सपना देखती थी; बडे भूस्वामियों को नष्ट करने की किसान सेनाओं की क्षमता के बावजूद वे एकीकृत केन्द्रीय सरकारें स्थापित करने में असक्षम थे। इसका परिणाम था बूर्जुआज़ी (अथवा उसके गुटों) के लिए रास्ता साफ करना
4). ध्यान देने की बात यह है कि उस वक्त विश्वविद्यालय आज के विशल विश्वविद्यालयों जैसे नहीं थे जिनमें मज़दूरों के भी कुछ बच्चे जाते हैं। उस समय, छात्रों में "*बहुत से धनी पूँजीपतियों के अथवा राज्य के विभिन्न स्तरों के कार्यकुनों के पुत्र थे ... जिन्होंने चीन के विनाश के साथ अपनी आय को गिरते देखा था और जापानी हमलों से आते और विनाश को भी देख सकते थे*" (*ला रिवोलूज़ेन साईनीज,* ऐन्रिका कलोती पिस्चेल)।
5). *लूत उूवरिये* नंबर 37, *बिलान* नंबर 46, जनवरी 1938 में उदृत।
6). *बिलान* नंबर 45, नवंबर 1937।
7). *बिलान* नंबर 46, जनवरी 1938।
8). *कम्युनिज्मे* नंबर 8, नवंबर 1937।
9). सोवियत संघ में भी पूँजीपति वरग का प्रभुत्व था, पर यह एक नए, प्रतिक्रांति से उभरते पूँजीपति वरग का सवाल था।
10). 1938 के मध्य से च्यांगकाई शेक ने एक बार फिर सीपीसी के खिलाफ कार्यवाही शुरु की। इस बरस के अगस्त में उसने "कम्युनिस्ट" पारटी के संगठनों को ग़ैरकनूनी घोषित कर दिया और अक्तूबर में शेन्सी में उसके आधारक्षेत्र की घेराबन्दी कर दी। 1939 और 1940 के बीच कोमिन्तांग तथा "लाल सेना" के बीच अनेक झडपें हुई। जनवरी 1941 में च्यांग ने 4थी सेना ("लाल सेना" की एक और टुकडी), जो केन्द्रीय चीन में गठित की गई थी, पर घात लगा कर हमला किया। इन सब कदमों से उसे, मित्रराष्ट्रों से संबंध तोडे बिना, जापान की सहायता हासिल करने की आशा थी। युद्ध के निश्चित परिणाम का इंतजार करते हुए, च्यांग ने एक पक्ष को दूसरे से लडाना जारी रखा।
11). चीन के अमेरिका की ओर झुकने के बाद 1974 में *लौस्ट चांसेज इन चाइना* शीर्षक से प्रकाशित। *द वर्ल्ड वार टू डिस्पेचज आफ जान एस सर्विस,* जेडव्लू एश्रिक (ऐडिटर), विनटेज बुक्स, 1974।

चेन डयूक्सी और वामपंथी विपक्ष

चेन डयूक्सी (1879-1942) ने 1915 में ***न्यू यूथ*** की स्थापना की। यह नयी दिशा देने वाली पश्चिमी धारा थी जिसे बीजिन्ग के "चार मई आंदोलन" ने जुझारु रुप दिया। वह 1920 में सोशलिस्ट यूथ लीग की स्थापना में शामिल था जो बाद में सीपीसी की पूर्ववर्ती बनी। उसने जुलाई 1925 में सीपीसी की स्थापना की तथा उसका पहला महासचिव बना। कोमिन्टरन के दवाब तले उसने कोमिन्तांग से सहयोग की नीति को स्वीकार किया। उसे कोमिन्तांग को भीतर से कंट्रोल करने की आशा थी। पर माओ के उल्ट उसे किसानी की क्रांतिकारी क्षमता पर कोई भरोसा नहीं था। कोमिन्र्टन की छठी कांग्रेस में (जिसमें वह गैरहाजिर था) उसे उन जुझारुओं के साथ, जिन्होंने पारटी की नीतियों के पुनरनिरीक्षण के लिए पारटी के अन्दर आम बहस की मांग पर हस्ताक्षर किये थे, सीपीसी से निकाल दिया गया। इसी वक्त उसकी मुलाकात मास्को से लौट रहे त्रात्सकीवादियों से हुई। उन्होंने हाल में ही ***वो मेन तीहुआ*** (***अवर वर्ड***) अखबार की स्थापना की थी। उनके समर्थन से उसने स्तालिनवादी कोमिन्टरन नियन्त्रित सीपीसी की दुस्साहसिक कार्यवाहियों की निन्दा की। कोमिन्तांग द्वारा 1932 में गिरफ्तारी के बाद उसे पन्द्रह बरस के कारावास की सज़ा दी गई। उसे 1937 में तब रिहा किया गया जब चीन जापान के खिलाफ जंग में उतरा। उसने जापान विरोधी संयुक्त मोरचे मे शामिल होने घोषणा की। तब से वह, सीपीसी के समान, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा तथा बुर्ज़ुाजी के कैंप में शामिल था। स्पष्ट है, सुदूर पूर्व में दूसरे विश्वयुद्ध का आरंभ 1937 में हो गया था।

सीपीसी में वामपंथी विपक्ष के संगठन का विकास 1928 से हुआ। आधार था 1927 की पराजय पर बहस तथा चीन संबंधी त्रात्सकी की रचनाओं का प्रकाशन। सीपीसी के जुझारुओं का एक जाना माना ग्रुप **द मूविंग फोर्स** प्रकाशित करता था। चेन डयूक्सी ने, स्वयं को त्रात्सकीवादी घोषित किये बिना, त्रात्सकी की पोजीशनों के समर्थन की घोषणा की। वामपंथी विपक्ष चार भागों में विभजित था :

– चेन डयूक्सी तथा पेंग शूत्से की "प्रोलेटेरियन एसोसियन" जो ***द प्रोलेटेरियन*** छापती थी;
– शंघाई स्थित ***अवर वर्ड*** (***वो मेन तीहुआ***);
– लियू जेनचिन्ग का ग्रुप ***अक्तूबर***;
– ***द मिलीटेन्ट*** ग्रुप।

(देंखें ***त्रात्सकी आन चायना***, पाथफांयडर प्रेस, न्यूयार्क, 1976। पेंग शूत्से की प्रस्तावना)

1931 में कम्युनिस्ट लीग आफ चायना (सीएलसी) के गठन के साथ ये ग्रुप एकजुट हो गए। परन्तु चीन पर जापान के हमले पर सीएलसी का अधिकांश प्रतिरोध की हिमायत पे सहमत हो गया। फलत् वे दुशमन के, बुर्ज़ुआजी के खेमे में शामिल हो गए। सिर्फ झेंग शायोलिन, वेंग फेंग्सी और मुट्ठीभर अन्य जूझारु ही अन्तर्राष्ट्रीयतावादी सिद्वान्तों के प्रति वफादार रहे व "क्रांतिकारी पराजयवाद" पर डटे रहे। वे ***द इंटरनेशनलिस्ट*** छापते थे और मानते थे लडाई आसन्न दूसरे महायुद्ध का हिस्सा थी।

झेंग शायोलिन ने ***द इंटरनेशनलिस्ट*** छापना जारी रखा तथा अगस्त 1941 में हुई सीएलसी की दूसरी कांग्रेस का वहिष्कार किया। वांग फेंग्सी, जो कांग्रेस में शामिल होने को राज़ी हो गया, की तुलना में उसकी पोजीशन सुसंगत थी। वांग फेंग्सी ने कुछ अन्तर करने की कोशिश की : वह आक्रमित राष्ट्र द्वारा "प्रतिरक्षात्मक" जंग का समर्थक था। पर एंग्लो सेक्सन शक्तियों द्वारा जापान के खिलाफ जंग में उतरने की सूरत में, साम्राज्यवादी जंग का समर्थन करने से उसने इन्कार कर दिया। उसका अल्पमत धडा पराजित रहा और त्रात्सकीवादी पेंग शूत्से द्वारा कांग्रेस से बाहर कर दिया गया।

हम इन मुट्ठीभर अन्तर्राष्ट्रीयतावादियों को सलाम करते हैं जिन्होंने यूरोप में इतालवी वाम की तरह मज़दूर आंदोलन के अंधेरे काल में कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीयतावादी झंडे को ऊँचा रखा। अपने भूमिगत पेपर ***द स्ट्रगल*** में चीनी त्रात्सकीवादियों ने जापान विरोधी प्रतिरोध के अपने ससर्थन को "क्रांतिकारी विजयवाद" का नाम दिया। रष्ट्रीय बुर्ज़ुआज़ी के पीछे यह कैसी दयानीय व शर्मनाक लामबन्दी थी।

इंटरनेशनल रिव्यू नंबर-94

चीन : विश्व साम्राज्यवादी जंजीर में एक कड़ी, भाग तीन

माओवाद, पतनशील पूँजीवाद की विकृत संतान

पहले लेखों में हमने चीन में सर्वहारा इंकलाब (1919-27) को रेखांकित किया है और इसे बाद के प्रतिक्रांति तथा साम्राज्यवादी जंग के दौर (1927-1949) से स्पष्टतः अलग किया है। हमने दिखाया कि तथाकथित "चीनी लोकक्रांति", मज़दूर वरग की हार पर आधारित थी। वह पूँजीवादी भ्रमजाल के सिवा कुछ नहीं थी जिसका लक्ष्य था चीनी किसान जनता को साम्राज्यवादी युद्ध की सेवा में भरती करना। इस लेख में हम इस भ्रमजाल के केन्द्रीय पहलु पर फोकस करेंगे : "क्रांतिकारी नेता" के रुप में माओत्से तुन्ग, तथा एक क्रांतिकारी सिद्वान्त, एक सिद्वान्त जो उपर से "मार्क्सवाद का विकास" होने का दावा करता है के रुप में माओवाद। हम यह सिद्व करने का इरादा रखते हैं कि माओवाद कभी भी एक पूँजीवादी विचारधारा तथा राजनीतिक रुझान के सिवा कुछ नहीं था, जो पतनशील पूँजीवाद की आंतों से निकला था।

प्रतिक्रांति तथा साम्राज्यवादी जंग : माओवाद की प्रसाविकाएँ

माओवाद का रुझान चीनी कम्युनिस्ट पारटी में केवल 1930 के दशक में, प्रतिक्रांति के मध्य, तब पैदा हुआ जब सीपीसी पहले तो परास्त तथा चकनाचूर हो गई थी और फिर पूँजी का औज़ार बन गई। माओ ने उन अनेक गुटों में से एक की रचना की जो पारटी के नियन्त्रण के लिए लड रहे थे और इस प्रकार उसके पतन का इज़हार थे। अपनी पैदाइश से ही माओवाद का सर्वहारा क्रांति से कोई सरोकार नहीं था, सिवा इसके कि वह मज़दूर वरग को कुचलती प्रतिक्रांति में से पैदा हुआ।

असल में माओ केवल 1945 में, जब "माओवाद" पारटी का आधिकारिक सिद्वान्त बना, पूर्वप्रभावी वांग मिन्ग गुट को मिटा कर ही सीपीसी का कंट्रोल हथिया पाया। तब सीपीसी विश्व साम्राज्यवादी जंग के शैतानी खेल में पूरी तरह संलग्न थी। इस अर्थ में माओ गिरोह का उदय साम्राज्यवादी बदमाशों से उसकी मिलीभगत का सीधा परिणाम था।

यह उन सब को चकित कर सकता है जो वीसवीं सदी के चीनी इतिहास को केवल माओ की रचनाओं अथवा बूर्जुआ इतिहासलेखन के द्वारा जानते हैं। यह कहना पडेगा कि माओ चीन तथा सीपीसी इतिहास को झुठलाने की कला को उस ऊँचाई तक ले गया (इसमें उसे स्तालिनवाद के तथा 1928 के बाद से अपने पूर्ववर्ती गिरोहों के तजुरुबे का लाभ मिला) कि घटनाओं, जैसे वे घटीं, की व्याख्या परी कथा का अभास देती है। यह विशाल जालसाजी माओत्से तुन्ग की विचारधारा के बूर्जुआ तथा गहन प्रतिगामी चरित्र पर आधारित है। विश्व की नज़रों में सीपीसी के शश्वत तथा अचूक नेता के रुप में प्रकट होने के घ्येय से इतिहास का पुनरलेखन करते समय, माओ बेशक अपनी राजनीतिक ताकत को सुदृड करने की आकांक्षा से चालित था। पर, उसने पूँजीपति वरग के बुनियादी हितों की पूर्ति की : दीर्घकाल में यह जरुरी था कि मज़दूर वरग के 1920 के दशक के तजुरुबे के सबकों को मिटा दिया जाए; अल्पकाल में मज़दूर तथा किसान जनसमूहों को साम्राज्यवादी नरसंहार में शिरकत के लिए तैयार करना जरुरी था। माओवाद ने इन दोनों लक्ष्यों को बाखूबी पूरा किया।

सर्वहारा पारटी के सफाये में माओत्से तुन्ग की भूमिका

माओत्से तुन्ग की अनुश्रुति के गिर्द बुना झूठों का जाल उसकी अस्पष्ट राजनीतिक जडों पर डाले परदे से आरंभ होता है। माओवादी इतिहासकार कितना ही रट लगाएँ कि वह सीपीसी के "संस्थापकों" में से एक था; उभरते हुए मज़दूर संघर्षों के तमाम दौर में माओ की राजनीतिक सरगर्मी सम्बंधी वे मूक बने रहते हैं। अन्यथा उन्हें मानना पडेगा कि माओ सीपीसी के उस अवसरवादी धड़े का हिस्सा था जो आंखें मूँदे तीसरे इंटरनेशनल की पतित होती कार्यकारी समिति के सभी दिशानिर्देशों का पालन करता था। उन्हे ठीक यह भी मानना पडेगा कि माओ सीपीसी के उस धड़े का सदस्य था जो 1924 में कोमिन्तांग, बडे चीनी बूर्जुआजी की नेशनल पापूलर पारटी, की कार्यकारिणी समिति में इस सतही बहाने शामिल हो गया कि वह बूर्जुआ पारटी नहीं बल्कि एक "वरग मोरचा" थी।

मार्च 1927 में। कोमिन्तांग सेनाएँ जब शंघाई विद्रोह का खूनी दमन कर रहीं थी और सीपीसी का क्रांतिकारी धड़ा जब कोमिन्तांग से गठज़ोड तोड़ने की हताश मांग कर रहा था, माओ अवसरवादी गायक मंडली में शामिल था। वह बूचड च्यांग काई शेक का गुणगान कर रहा था तथा कोमिन्तांग के कदमों को सराह रहा था।(2) कुछ देर बाद, चीन में हाल ही में आए स्तालिन के गुर्गों के दबाब तले कोमिन्तांग में माओ का एक जोडीदार, कू क्युबाई, सीपीसी का नेता मनोनीत कर दिया गया। उसका मुख्य मिशन था सर्वहारा विद्रोह के कुचले जाने का जिम्मा चेन डयूक्सी –जो बाद में त्रात्सकी का समर्थक तथा सीआई के अवसरवादी फैसलों के खिलाफ संघर्षरत्त रुझानों में से एक का प्रतीक बना(3) –के मत्थे मढ़ना। उसे अवसरवाद में फंसने तथा किसान आंदोलन को कम करके आंकने का दोषी करार देकर। इस नीति का परिणाम था विनाशकारी कर्मों की एक श्रृंखला जिनमें माओ 1927 के दूसरे भाग में पूरी तरह संलिप्त था, और जिसने सीपीसी के बिखराव तथा विनाश के सिलसिले को तेज़ किया।

अगर हम माओ द्वारा 1945 में सुधारे गए इतिहास में विश्वास करें, उसने कू कूबाई के "वामपंथी असवरसवादी विचलनों" की निन्दा की। सच्च यह है कि माओ इस नीति के बडे समर्थकों में से एक था। यह हम ***हूनान की रिपोर्ट*** से देख सकते हैं, जो "*करोडों किसानों के प्रचण्ड विद्रोह*" की भविष्यवाणी करती है। यह भविष्यवाणी "पतझड की फसल के विद्रोह" में चरितार्थ हुई, जो कू कूबाई की "विद्रोह की नीति" की एक अत्यन्त घोर विफलता थी। मज़दूर वरग कुचल दिया गया और इसके साथ ही विजयी इंकलाब की सभी संभावनाएँ भी मिट गईं। इन परिस्थितियों में किसान विद्रोह उकसाने का कोई भी प्रयास केवल विनाशकारी ही साबित हो सकता था और नए नरसंहारों की ही राह खोल सकता था। हूनान में "*करोडों किसानों का*" मशहूर "*प्रचण्ड विद्रोह*" असल में माओ की अगुआई में 5000 किसानों तथा लुम्पन तत्वों के घिनोने तथा खूनी दुस्साहस में बदल गया, जिसका अन्त था उसकी पराजय। जो जीवित बचे वे पहाडों की ओर पलायन कर गए और उनके नेता को पारटी पोलितब्यूरो से निकाल बाहर किया गया।

सर्वहारा क्रांति के काल में माओ त्सेतुन्ग सीपीसी के अवसरवादी धडे का हिस्सा था। और उसने मज़दूर वरग की पराजय तथा एक सर्वहारा संगठन के रुप में सीपीसी के खातमे में सक्रिय योगदान दिया।

एक पूँजीवादी पारटी में सीपीसी का रुपांतरण तथा माओ गिरोह का गठन

अपने पहले लेखों में हमने देखा किस प्रकार सीपीसी स्तालिनवाद तथा चीनी प्रतिक्रियावाद की संयुक्त ताकत से भौतिक तथा राजनीतिक तौर पर मिटा दी गई। 1928 से मज़दूर सामूहिक रुप से पारटी में शामिल नहीं होते थे। तब, जब पारटी अब सिरफ नाम की कम्युनिस्ट थी, मशहूर लाल सेना का गठन शुरु हुआ जिसने पारटी की पांतों को किसानी तथा लुम्पन सर्वहारा तत्वों से भर दिया। सीपीसी के भीतर ऐसे तत्व आगे आने लगे जो मज़दूर वरग से बहुत दूर थे और, कहना न होगा, कोमिन्तांग के निकटतम थे। पारटी तमाम तरह के प्रतिक्रियावादी कचरे के आगमन से बढने लगी जिसमें रुस में मंत्र रटे स्तालिनवादियों से लेकर कोमिन्तांग के जनरल, इलाके की तलाश में युद्ध सरदार, देशभक्त

बुद्दिजीवी तथा उच्च बूजुर्आ तथा सामान्ती तत्व तक शामिल थे। नई सीपीसी के भीतर यह तमाम कचरा पारटी तथा लालसेना पर कबजे के लिए जिन्दगी तथा मौत की लडाई पर आमादा था।

कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की तमाम पारटियों के समान, प्रतिक्रांति सीपीसी के पतन तथा पूँजी के एक औज़ार में उसके रुपांतरण में अभिव्यक्त हुई। ये पारटियां समूचे मजदूर वरग के भीतर भारी भ्रम का स्रोत्र बनीं। इन्होंने उसे क्रांतिकारी संगठन के कार्य और उसकी अंदरुनी कार्यप्रणाली जैसे बुनियादी सवालों पर गुमराह किया। बूर्जुआज़ी के आधिकारिक विचारकों ने इन भ्रमों को और बढाया तथा फैलाया है। आधिकारिक इतिहासकार 1928 से लेकर अब तक की सीपीसी को एक माडल कम्युनिस्ट पारटी के रुप में पेश करते हैं। पश्चिमी जनतन्त्रों के रक्षकों के लिए सीपीसी के भीतर अनवरत जंगें कम्युनिस्टों के नीच व्यवहार का तथा मार्क्सवाद के झूठों का सबूत है; माओवाद के समर्थकों के लिए यही लडाईयां ''चेयरमैन माओ की सही लाईन के बचाब'' की साधन थीं। ये दोनो प्रकार के विचारक देखने में विरोधी लगते हैं पर एक ही दिशा में कार्यरत्त हैं : मिथ्याचार से दिखाना कि सर्वहारा के क्रांतिकारी संगठन उनके पूर्णतया विपरीत के, पूँजीवादी पतनशीलता तथा बुर्जुआ प्रतिक्रांति से पैदा संगठनों के समान हैं। एक चीज़ तय है। माओ बुर्जूआ बन गई एक सीपीसी की सडांध में ही अपनी पूरी ''संभावनाएँ'' चरितार्थ कर सकता था। माओ गिरोहवाज़ के उन तरीकों को पहले ही अजमा चुका था जो पारटी तथा सेना को कंट्रोल करने के उसके काम आने वाले थे, खासकर सीकियांग के पहाडों की ओर उसके ''महान'' पलायन के दौरान – जो असल में एक विनाशकारी भगदड़ थी। उसने क्षेत्र पर नियन्त्रण पाने के लिए उस पर काबिज सशस्त्र गिरोहों के सरदारों से गठज़ोड बनाए, बाद में उनका सफाया करने के लिए। इसी दौर में, च्यांग काई शेक के विरोधी एक जनरल चूतेह के साथ गठबंधन के जरिये माओ गिरोह का उदय हुआ। चूतेह आजीवन के लिए माओ का जोडीदार बना। माओ स्वयं से बलशाली अपने विरोधियों की चाटुकारिता में माहिर था, कमज़कम जब तक वह पारटी पदानुक्रम में उनकी जगह नहीं ले सकता था। जब ली ली सान ने कू कूबाई का स्थान लिया, माओ ने उसकी ''राजनीतिक लाईन'', जो असल में उसके पूर्ववर्ती की ''षडयन्त्रवादी'' नीतियों के बरकरार रहने के सिवा कुछ नहीं था, का समर्थन किया। पर माओ द्वारा संशोधित इतिहास का संस्करण हमें बताता है कि उसने फौरन ली ली सान का विरोध किया। असल में बुखारिन की प्रेरणा से सीआई के ''तीसरे काल'' में (देखें सीआई का अक्तूबर 1929 का खत) तथा 1930 के दशक में ली ली सान की अगुआई में किये गए तख्तापल्ट के अनेक विनाशकारी प्रयासों में से एक में माओ पूरी तरह शामिल था। सत्तापलट के इन प्रयासों का लक्ष्य था किसान गुरिल्ला सेनाओं द्वारा ''शहरों को जीतना''। 1930 में (रुस से) ''लौटे छात्रों'' अथवा ''28 बोलशेविकों'', जिन्होंने दो साल तक रुस में ट्रेनिंग हासिल की थी, के रुप में मशहूर वांग मिंग की अगुआई वाले गुट ने पारटी की पर्ज़ तथा उस पर कब्जा करना शुरु किया और ली ली सान को हटाया। माओ ने एक बार फिर पासा पलटा। ''फूजियान'' का भेदभरा वाक्यात इसी समय घटित हुआ। माओ त्सेतुंग ने फूजियान पर काबिज सीपीसी के खिलाफ एक बडा दण्डात्मक अभियान छेडा। पारटी के इस धडे के नेताओं पर, विभिन्न विवरणों में, ली ली सान के पिछलग्गु, बोलशेविक विरोधी लीग का हिस्सा, अथवा समाजवादी पारटी के सदस्य होने का आरोप लगाया गया। सच्चाई का एक अंश माओ की मौत के बरसों बाद सामने आया। 1982 में एक चीनी रिव्यू ने भेद खोला : *''पश्चिम फूजियान में शुद्दिकरण अभियान दिसंबर 1931 में फूजियान वाक्यात से शुरु हुए। वे कई माह चले। फलस्वरुप समूचे सोवियत जोन में हत्याकाण्ड चला। पारटी के अनेक नेताओं तथा लडाकुओं को समाजवादी पारटी के सदस्य होने का दोषी करार दे मौत के घाट उतार दिया गया। शिकार लोगों की संख्या चार से पांच हज़ार के बीच आंकी जाती है। सच्चाई यह है कि इलाके में समाजवादी पारटी का नामोंनिशान नहीं था.....''*(4)।

ये शुद्दिकरण वह कीमत थी जो माओ ने ''पलटे छात्रों'' की अनुकम्पा जीतने के लिए अदा की। ली ली सान लाईन का हिमायती रहने और फूजियान में ज्यादतियों का दोषी करार दिये जाने के बावजूद, उसे अन्य के समान न तो खतम किया गया और न निर्वासित। यद्यपि उसे सैनिक कमाण्ड से हटा दिया गया। अडम्बरी तरीके से ''चीन में सोवियतों की पहली कांग्रेस'' के रुप में नामांकित कांग्रेस के दौरान 1931 के अन्त में उसे ''सोवियतों के अध्यक्ष'' बनाये जाने की सांत्वना हासिल हुई : यह वांगमिन्ग गुट के कंट्रोल तले एक प्रशासकीय रोल था।

इस घड़ी से माओ ने अपने गुट की ताकत बढाने तथा ''पलटे छात्रों'' के गुट में फूट डालने का प्रयास किया। पर वह उन्ही के अगूँठे तले रहा जैसा वांगमिन्ग द्वारा ''फूजियन सरकार'' (च्यांग काईशेक के प्रति बागी जनरलों द्वारा गठित) से गठजोड़ की माओ की पेशकश ठुकराये जाने से साफ है। वांग मिन्ग सोवियत रुस से तथा च्यांग काई शेक से अपनी मौजूद संधियों को खतरे में डालना नहीं चाहता था। माओ को खुलेआम पीछे हटना तथा इस ''सरकार'' पर ''जनता से छलकपट'' का आरोप लगाना पडा(5)। इससे यह भी साफ है कि यद्यपि माओ 1934 में अध्यक्ष बनाया गया, पारटी का असली शक्तिपुरुष चांग वेनतियन ही रहा जो ''सोवियतों'' का प्रधानमन्त्री तथा ''पलटे छात्रों'' में से एक था।

स्तालिनवादियों संग लांग मार्च पर

''चीनी जनक्रांति'' की दंतकथा में लांग मार्च को सदा इतिहास के महानतम ''साम्राज्यवाद विरोधी'' तथा ''क्रांतिकारी'' महाकाव्य के रुप में पेश किया जाता है। हमने पहले ही दिखाया है कि इसका असली मकसद था देश के दर्जनों क्षेत्रों में बिखरी तथा बडे भूस्वामियों से संघर्षरत्त किसान गुरिल्ला ताकतों को एक केन्द्रीकृत नियमित सेना में रुपांतरित करना जो मोरचों की जंग लड सके। मकसद था चीनी साम्राज्यवादी नीति के एक औज़ार का गठन। दंतकथा हमें यह भी बताती है कि लांग मार्च अध्यक्ष माओ द्वारा प्रेरित तथा संचालित था। यह पूरी तरह सच नहीं। पहली बात, लांग मार्च की तैयारी के पूरे दौर में माओ बिमार तथा वांग मिन्ग गुट द्वारा राजनीतिक तौर पर अलग थलग था। वह कुछ भी ''प्रेरित'' करने की स्थिति में नहीं था। तदोपरान्त, माओ समेत किसी द्वारा भी मार्च की अगुआई संभव नहीं थी। चूँकि लाल सेना की कोई केन्द्रीय कमान नहीं थी बल्कि वह दर्जन भर कमोबेश स्वतन्त्र तथा अलग थलग रेजीमेंटों से गठित थी (केन्द्रीकृत जनरल स्टाफ का गठन वास्तव में इस अभियान के लक्ष्यों में से एक था)। सीपीसी तथा लाल सेना दोनों में जोड़ने वाला एकमात्र तत्व थी सोवियत रुस की साम्राज्यवादी नीति जिसका प्रतिनिधित्व ''पलटे छात्र'' करते थे। इनकी ताकत का एकमात्र राज़ स्तालिन शासन की राजनीतिक, कूटनीतिक तथा फौजी हिमायत थी। दंतकथा हमें यह भी ''सिखाती'' है कि यह लांग मार्च के दौरान ही था कि माओ की ''सही लाईन'' वांग मिन्ग तथा झांग कू तायो की ''गलत लाईन'' पर विजयी हुई। असलियत यह है कि शक्तियों के जमाव ने नेतृत्व के भीतर लाल सेना के नियन्त्रण के लिए प्रतिद्वन्दता को तीखा किया। सच्चाई के सम्मान खातिर हमें कहना चाहिए कि इन घृणित संघर्षों में गर माओ अपना असर बढा पाया तो यह उसने वांग गुट के साये में किया। इस संदर्भ में दो वृतांत अहम हैं।

पहला जनवरी 1935 की जूनीइ मीटिंग से संबंधित है। माओवादी मीटिन्ग को ''ऐतिहासिक'' बताते हैं चँकि यह उस घडी का निशान मानी जाती है जब माओ ने लाल सेना की कमान संभाली। असल में यह मीटिन्ग (उस टुकडी के विभिन्न गुटों द्वारा रचित जिसमें माओ सफर कर रहा था) एक षडयन्त्र थी जिसमें चेंग वेनतियन, जो ''पलटे छात्रों'' में से एक था, पारटी सचिव नामजद किया गया। माओ ने मिलटरी कमेटी से हटाये जाने से पूर्व की अपनी पोजीशन हसिल

कर ली। तत्काल बाद इन नामांकनों पर अधिकतर पारटी में विवाद छिड गया चूँकि जूनीइ मीटिन्ग को पारटी कांग्रेस का रुतबा हासिल नहीं था। बाद में सीपीसी में विभाजन के मूल में कारणों में यह एक था।

दूसरा वृतांत चन्द माह बाद की सीचुयान क्षेत्र की घटनाओं से जुडा है। यहां लाल सेना की कई सारी टुकडियां जमा थी। माओ ने "पलटे छात्रों" की मदद से समग्र सेना की कमान हथियाने का प्रयास किया। माओ के नामांकन का विरोध सीपीसी के एक पुराने मेंम्बर झांग कूओ ताओ ने किया, जिसने एक "लाल आधारक्षेत्र" का नेतृत्व किया था और अब माओ तथा चेंग वेनतियन से अधिक बलशाली एक रेजीमेण्ट का नेता था। इसका नतीजा था एक हिंसक विवाद जिसका अन्त दो विरोधी केन्द्रीय समितियों के नेतृत्व में पारटी तथा लाल सेना में विभाजन से हुआ। झांग ने सीचुयान क्षेत्र में अपनी पोजीशन बरकरार रखी जहां अधिकतर सेनाएं पहली ही जमा थी। माओ के कई जोडीदार भी, जैसे लियू बोचेंग व वफादार चूतेह (जो सीकांग में 1927 की भगदड के समय से साये की तरह माओ से चिपका हुआ था) झांग से जा मिले। माओ तथा चेंग वेनतियन इलाके से भाग गए और उन्होंने ने यूनान के "आधार क्षेत्र" में जाकर शरण ली जो लाल सेना की टुकडियों के लिए जमा होने का आखिरी बिन्दू था।

सीचूयान में रह गई सेनाएँ अलग थलग पड कर धीरे धीरे नष्ट हो गई। इसने बची टुकडियों को येनान में सेना में जा मिलने को मज़बूर किया। झांग का भाग्य बन्द हो चुका था : उसे फौरन सभी पदों से हटा दिया गया और 1938 में वह कोमिन्तांग में जा मिला। "द्रोही झांग कू तायो के खिलाफ संघर्ष" की दन्तकथा का जन्म इन्हीं घटनाओं से हुआ। असल में झांग के पास कोई चारा न था :गर माओ द्वारा शांगसी में आरंभ शुद्विकरण अभियानों से बचना तथा जिन्दा रहना था तो उसे बुर्जूआजी के अन्य गुट के समर्थन की जरुरत थी। पर माओ तथा झांग में जरा भी वरग विभेद न था। जैसे सीपीसी एवम कोमिन्तांग में नहीं था।

काबिले याददाश्त है कि सीचूयान में सैनिक जमाव के इस दौर में ही सीपीसी ने सोवियत रुस की साम्राज्यवादी नीति (स्तालिनवादी कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की सातवीं कांग्रेस में 1935 में घोषित) को मुखर करते हुए जापान के खिलाफ राष्ट्रीय संयुक्त मोरचे का आवाहन किया : दूसरे शब्दों में, स्वयं को अपने शोषकों की सेवा में अर्पित करने की शोषितों से अपील। इसने न सिरफ सीपीसी के बुर्जूआ चरित्र को बल्कि साम्राज्यवादी जंग के लिए मानवीय गोलेबारुद की मुख्य भरतीकरता के उसके रोल की भी पुष्टि की।

येनान का नियन्त्रण, कोमिन्तांग संग गठजोड

येनान में, 1936 तथा 1945 के बीच जापान के साथ युद्ध में, माओ त्सेतुन्ग ने सीपीसी तथा लाल सेना पर नियन्त्रण पाने के लिए शातिरता, चालबाजी तथा शुद्विकरण अभियानों का सहारा लिया। येनान के गुटीय युद्ध में तीन मंजिलें थी जो माओ के उदय को चिन्हित करती हैं : येनान आधारक्षेत्र के संस्थापक ग्रुप का सफाया, माओ गुट का दृढीकरण, और वांग मिन्ग गुट के साथ पहला खुला टकराव जिसका फल था उसका उन्मूलन।

माओवाद शांग्सी में लाल सेना के प्रसार को किसानों के क्रांतिकारी संघर्ष के फल के रुप में प्रशंसित करता है। हमने दिखाया है कि यह प्रसार सीपीसी के किसानों को भरती करने के तरीके पर (एक अन्तर वरगीय गठजोड के लिए जिसमें किसान लगान में गिरावट –इतनी कि भूस्वामी उसे स्वीकार कर लें– के बदले में साम्राज्यवादी नरसंहार में लामबन्द होना स्वीकार करते हैं) तथा क्षेत्रीय युद्धसरदारों तथा कोमिन्तांग के साथ उसके गठजोडों पर आधारित था। 1936 की घटनाएँ इस संदर्भ में रहस्योदघाटक हैं, वे ये भी दिखाती हैं कि येनान के पुराने नेतृत्व का सफाया कैसे किया गया।

जब अक्तूबर 1935 में माओ तथा चांग वेनतियन की रेजीमेन्ट येनान पहुँची, क्षेत्र पहले ही गुटीय लडाईयों का शिकार था। 1930 के आरंभ से क्षेत्र का संस्थापक लियू शीदान शुद्विकरण अभियानों का शिकार हो चुका था। वह कैद था तथा यातनाओं का शिकार था। उसे नई पहुँची रेजीमेन्ट का फौरी समर्थन मिला। माओ तथा चांग की माताहती स्वीकार करने के एवज में उसे मुक्त किया गया।

1936 के आरंभ में लियू शीदान की सेना को पूर्व में शान्सी की ओर अभियान छेडने तथा स्थानीय युद्धसरदार यान जीशान तथा उसकी समर्थक कोमिन्तांग सेनाओं पर हमला करने का आदेश मिला। अभियान असफल रहा। लियू शीदान मारा गया। पश्चिम की ओर एक अन्य अभियान का भी यही हश्र हुआ। इन घटनाओं ने, खासकर लियू शीदान की मौत ने, येनान क्षेत्र पर माओ तथा चांग का नियन्त्रण संभव बनाया। यह कुछ बरस पूर्व जिन्गयांग पहाडों पर कबजे के माओ के तरीके की याद दिलाता है: उसने शुरुआत जोन के नेतृत्व संग समझौते से की, बाद में उनकी "दर्दनाक मौतों" से इलाके की एकक्षत्र कमान उसके हाथ लगी।

पूर्व और पश्चिम के अभियान जब हार रहे थे, माओ एक अन्य युद्धसरदार संग गठजोड कर रहा था। येनान के दक्षिण में सियान क्षेत्र भाडे के सैनिक यांग हुचेंग के कबजे में था। उसने मंचूरिया के गवर्नर झांग स्यिूलियांग तथा उसकी सेनओं को जापानियों के हाथों उनकी हार के बाद शरण दे रखी थी। माओ ने दिसंबर 1935 में यांग हुचेंग से संपर्क किया और चन्द माह बाद उनमें अनाक्रमण समझौता हो गया। "सियान वाक्यात" की पीठिका यह समझौता ही था (देखें इंटरनेशनल रिव्यू नंबर 84) : च्यांग काईशेक यांग हुचेंग तथा झांग स्यिूलियांग द्वारा बन्दी बना लिया गया। वे जापानियों से मिलीभगत के लिए उस पर मुकदमा चलाना चाहते थे। स्तालिन के दबाव तले उसकी गिरफ्तारी का प्रयोग सीपीसी तथा कोमिन्तांग में केवल एक नया गठजोड़ हसिल करने के लिए किया गया।

कहने की जरुरत नहीं, माओवादियों ने युद्धसरदारों तथा शंघाई के जल्लाद संग सीपीसी के गठजोडों को –जिनमें माओ का सीधा हाथ था– शासक वरग में विद्यामान फूटों से लाभ उठाने के घ्येय से की गई दक्ष पैंतरबाजी दरसाया है। यह सच है कि भूस्वामियों तथा सेना से गठित परंपरागत बूर्जुआजी विभजित था। पर वरग हितों की विभिन्नता की बजह से नहीं। न ही इस बजह से कि उनमें से कुछ प्रतिगामी तथा अन्य प्रगतिशील थे और न ही, जैसे माओ हमें विश्वास दिलाता है, इस लिए कि कुछ "अक्लमन्द" थे तथा अन्य नहीं। विभाजन उनके अपने निजी हितों की हिफाजत पर टिके हुए थे। कुछ जापानी अधिपत्य मे चीनी एकता के हामी थे चूँकि इससे उनकी स्थानीय शक्ति बढती अथवा बरकरार रहती थी; जबकि मंचूरिया का गवर्नर, जो पदच्युत कर दिया गया था, जैसे दूसरे जापान विरोधी अन्य साम्राज्यवादी ताकतों का समर्थन खोज रहे थे।

इस अर्थ में सीपीसी तथा कोमिन्तांग में गठजोड स्पष्टतः बुर्जूआ तथा साम्राज्यवादी था। वह सोवियत रुस की सरकार तथा च्यांग काई शेक में सैनिक संधि तक गया जिसमे लडाकू तथा बमबर्षक जहाजों और 200 लारियों की सप्लाई शामिल थी। 1947 तक यह कोमिन्तांग की सप्लाई का मुख्य साधन था। इसके साथ ही सीपीसी अपने जोन (मशहूर शांन्सी-गांक्सू-निन्गसिया) में स्थापित हो गई। उसने लाल सेना की मुख्य रेजीमेंटें (चौथी तथा आठवीं) च्यांग काई शेक की सेना में संयोजित कर दीं और उसका एक कमिश्न कोमिन्तांग सरकार में शामिल हो गया।

सीपीसी के अन्दरुनी जीवन के स्तर पर, हम बताना चाहेंगे कि जिस कमिश्न ने च्यांग के साथ वार्ताएँ की और जो बाद में च्यांग सरकार में शामिल हुआ, वह "पलटे छात्रों" (पो कू एवम स्वयं वांग मिन्ग) तथा माओ गुट (चाओ एन लाई), दोनों का प्रतिनिधित्व करता था। इससे पुष्ट होता है कि पारटी तथा सेना पर अभी माओ का नियन्त्रण नहीं था और कम से कम प्रकट रुप से वह अभी स्तालिन के गुर्गों से जुडा हुआ था।

वांग मिन्ग की पराजय और अमेरिका से जोडतोड़

माओ तथा "पलटे छात्रों" में दुश्मनी सर्वप्रथम अक्तूबर 1938 में सीपीसी की केन्द्रीय सीमित के प्लेनरी अधिवेशन में खुल कर सामने आई। माओ ने पारटी में वांग मिन्ग का असर कम करने के लिए वुहान (कोमिन्तांग सरकार का केन्द्र जिस पर जापान ने हमला किया था और जिसकी रक्षा के लिए वांग मिन्ग जिम्मेवार था) की घोर असफलता का फायदा उठाया। तो भी उसे पारटी महासचिव के रुप में चांग वेनतियन का नामांकन स्वीकार करना पडा। साम्राज्यवादी जंग द्वारा स्तिथियां "पलटे छात्रों" के खिलाफ मोडना संभव बनाने के लिए माओ को अभी दो साल और इंतजार करना पडा।

1941 में जर्मन सेना ने सोवियत रुस पर हमला बोल दिया। एक नया मोरचा खोलने से बचने के ध्येय से स्तालिन ने जापान संग अनाक्रमण संधि का रास्ता अपनाया। इसका फौरी नतीजा था कोमिन्तांग के लिए रुसी सहायता का अन्त तथा इसके साथ ही सीपीसी में वांग मिन्ग के स्तालिनवादी गुट, जोकि जापानी शत्रु से सहयोग के लिए वाघ्य था, की पंगुता तथा पतन। दिसंबर में पर्ल हार्बर पर जापानी हमले से अमेरिका भी प्रशांत महासागर के नियन्त्रण के युद्ध में कूद पडा। इन घटनाओं ने कोमिन्तांग तथा सीपीसी दोनो को अमेरिका की ओर मुडने को प्रेरित किया, खासकर माओ के गुट को।

माओ ने "पलटे छात्रों" तथा उनके प्रशंसकों पर एक चौतरफा हमला शुरु किया। 1942 से 1945 तक चले दण्डात्मक "भूलसुधार" आंदोलन का यही तात्पर्य था। माओ ने शुरुआत पारटी नेताओं, खासकर "पलटे छात्रों", पर हमले से की। उसने उन पर "जड़सूत्रवादी तथा मार्क्सवाद को चीन में लागू करने में असक्षम होने" का आरोप लगाया। माओ ने वांग गुट में प्रतिस्पर्धाओं का खूब फायदा उठाया और उसके कुछ सदस्यों को अपने साथ मिला लिया। इनमें शामिल थे लियू शओ ची, जो पारटी सचिव बना, तथा कांग चेंग, जो माओ के घिनौने कृत्यों का मुख्य कर्ता बना – एक पोजीशन जो फूजियान में 1930 में माओ खुद संभाले था।

वांग गुट के प्रकाशन बन्द कर दिये गए और केवल माओ के नियन्त्रण वालों को ही छपने की इज़ाजत थी। पारटी स्कूलों तथा जुझारुओं के अध्यन पर माओ गुट का कब्जा था। शुद्विकरण (Purges) अभियान जारी रहे। गिरफ्तारियां और सताये जाने की घटनाएँ येनान से लेकर समूची पारटी तथा सेना में फैल गई। चाओ एन लाई जैसे कुछ माओ के प्रति वफादार रहे। "जिद्दीओं" को युद्ध क्षेत्रों में भेज दिया गया जहां वे जापानियों के हाथों पड गए अथवा सीधे उनका सफाया कर दिया गया।

शुद्विकरण अभियान तीसरा इंटरनेशनल भंग करने और सीपीसी व कोमिन्तांग के बीच अमेरिकी मघ्यस्थता के साथ साथ, 1943 में अपने चरम पे पहुँचा। शुद्विकरण अभियानों (Purges) के दौरान कम से कम 50000-60000 लोगों का सफाया कर दिया गया। अग्रणी "पलटे छात्र" मिटा दिए गए : चांग वेनतियन को येनान से निष्कासित कर दिया गया, वांग मिन्ग विषाक्त करने के प्रयास से बाल बाल बचा, पो कू रहस्यपूर्ण तरीके से एक "हवाई दुर्घटना" में मारा गया।

साम्राज्यवादी जंग के परिप्रेक्ष्य में "भूलसुधार अभियान" अमेरिका के प्रति सीपीसी के झुकाव से मेल खाता था। इस पहलु को इंटरनेशनल रिव्यू नः 84 में हम पहले ही परख चुके हैं। उल्लेखनीय है कि इस झुकाव की प्रेरणा माओ और उसके गुट से मिली जैसा हम येनान में अमेरिकी मिशन के उस वक्त के आधिकारिक पत्राचार से देख सकते हैं (6)। यह महज एक संयोग नहीं कि स्तालिनवादी गुट के खिलाफ लडाई अमेरिका से मेलमिलाप की सम्पाती है। हां, यह माओ को "कम्युनिस्ट कैंप" के प्रति गद्दार साबित नहीं करता जैसा वांग मिन्ग गुट तथा रुस में शासक गुट बाद में दावा करते रहे हैं। इससे उसकी नीतियों का मात्र बूर्जुआ चरित्र सपष्ट होता था। च्यांग काई शेक व माओ समेत, समूचे चीनी बूर्जुआजी के लिए उनके अस्तित्व के अवसर सर्द दिमाग से यह आंकने की उनकी क्षमता पर निर्भर थे कि वे किस साम्राज्यवादी ताकत की सेवा करें : अमेरिका अथवा रुस की।

न ही यह संयोग की बात है कि जर्मनी पर सोवियत रुस की जीत के आसार सुधरने के साथ "भूलसुधार" का सुर उदार पडने लगा। "शुद्विकरण" अभियान आधिकारिक तौर पर अप्रैल 1945 मे, यालटा संधि पर दस्तखतों के दो महीने बाद, समाप्त हो गए। जहां मित्र साम्राज्यवादी ताकतों ने, अन्य बातों के अलावा, इस चीज़ का फैसला लिया कि रुस को जापान पर युद्ध घोषित कर देना चाहिए, एन ऐसे वक्त जब वह उत्तरी चीन पर हमले की तैयारी कर रहा था। इसी लिए सीपीसी को रुस का आज्ञा पालन करना पडा। स्तालिनवादी कैंप में माओ की अस्थायी वापिसी उसकी स्वतन्त्र मरज़ी से नहीं बल्कि साम्राज्यवादी महाशक्तियों में दुनिया के नए बंटवारे की बजह से हुई थी।

जो भी हो, "भूलसुधार" का नतीज़ा था सीपीसी और सेना पर माओ तथा उसके गैंग का कंट्रोल। माओ ने अपने लिए पारटी प्रेज़ीडेंट के ओहदे की रचना की। माओवाद अथवा "माओ त्सेतुंग विचार" को "चीन में प्रयुक्त मार्क्सवाद" घोषित किया गया। तब से माओवादी दन्तकथा का सहारा लेकर व्याख्या करते हैं कि माओ अपनी सैद्वान्तिक तथा रणनीतिक सूझवूझ तथा "गलत लाईनों" के खिलाफ अपने संघर्ष के चलते नेतृत्व में आया। वे हमें यकीन दिलाना चाहते हैं कि माओ ने लाल सेना की नींव रखी। कृषिसुधार कार्यक्रम की रचना की। लांग मार्च का विजयी नेतृत्व किया। लाल आधारक्षेत्रों की रचना की आदि। और यह सब पूर्णतः झूठ हैं। इस प्रकार शातिर माओ त्सेतुंग स्वयं को एक मसीहा के रुप में पेश कर पाया।

माओवाद : पूँजी का एक वैचारिक औज़ार

इस प्रकार, स्वनाम कम्युनिस्ट होने के बावजूद पहले ही बुर्जुआ एक पारटी में, माओवाद दूसरे साम्राज्यवादी युद्ध के दौरान एक प्रभावी विचारधारा बना। आरंभ से ही माओवाद का लक्ष्य था पारटी के तमाम नियन्त्रकों पर माओ तथा उसके गैंग की जकड़ को उचित सिद्व करना व सुदृड बनाना। उसे कोमिन्तांग, कुलीन वरग, युद्धसरदारों, बडे पूँजीपतियों तथा तमाम साम्राज्यवादी ताकतों के संग संग साम्राज्यवादी जंग में पारटी की शिरकत को भी उचित सिद्व करना था। इस मकसद से उसे सीपीसी की असली ज़डों को छिपाना पडा। माओवाद पारटी के भीतर गुटों की लडाई की विशष्ट "व्याख्या" करके ही संतुष्ट नहीं हुआ : उसने पारटी तथा वरग संघर्ष के इतिहास को भी पूर्णता झुठलाया तथा विकृत किया। सर्वहारा क्रांति की हार तथा सीपीसी के पतन पर सावधानी से पोंछा फेर दिया गया। पूँजी के एक औज़ार के रुप में सीपीसी की नई पहचान को "सैदान्तिक" तौर पर उचति ठहराने का काम माओवाद ने किया।

इन जाली आधारों पर माओवाद ने पूँजीवादी प्रचार के एक अन्य औज़ार के तौर पर अपनी क्षमता सिद्व कर दी जो मेहनतकश आबादी को, खासकर किसानी को, साम्राज्यवादी जंग के देशभक्ति के झंडों तले लामबन्द करने के काम आया। एक बार सीपीसी द्वारा सत्ता हथियाने के बाद माओवाद चीनी "जनता के राज्य" का, यानी चीन में स्थापित राज्य पूँजीवाद का, आधिकारिक "सिद्वान्त" बना।

एक छदम मार्क्सवादी भाषा के प्रति अस्पष्ट संकेतों के बावजूद "माओ त्सेतुंग विचार" बुर्जूआ कैंप में अपनी ज़डों को नहीं छिपा सकता। सीपीसी तथा कोमिन्तांग के साझे मोरचे में हिस्सा लेते वक्त माओ का पहले ही मानना था कि किसानी के हित सनयात सेन द्वारा प्रतिनिधित्व बुर्जूआजी के हितों के अधीन रहने चाहिए : *"राष्ट्रीय क्रांति का असल लक्ष्य है सामान्ती ताकतों की पराजय (...) किसानों ने समझ लिया है डाक्टर सनयात सेन चाहता क्या था, जिसे वह राष्ट्रीय क्रांति को अर्पित अपने चालीस बरसों में हासिल नहीं कर पाया।"(7)* असल में सनयात सेन के सिद्वान्तों का जिक्र साम्राज्यवादी जंग के लिए लामबन्दी के माओवादी प्रचार के

केन्द्र में बना रहा : *''यहां तक कम्युनिस्ट पारटी का सवाल है, पिछले दस सालों में उस द्वारा अपनायी समग्र नीति डाक्टर सनयात सेन के जनता के तीन सिद्वान्तों और तीन महान नीतियों की क्रांतिकारी भावना के अनुरुप रही है''*(8)। *''यह आवश्यक है कि हमारा प्रचार इस प्रोग्रोम से मेल खाए : जनता को जापान के खिलाफ प्रतिरोध के लिए जागृित करके डाक्टर सनयात सेन की वसीयत को पूरा करना''*(9)।

इस श्रांखला के पहले लेखों में हमने दिखाया कि "*राष्ट्रीय क्रांति को अर्पित चालीस बरसों''* में सनयात सेन लगातार साम्राज्यवादी ताकतों, जापान समेत, से गठजोड के लिए प्रयासरत्त था। 1911 की ''क्रांति'' के आरंभिक दौर में भी उसका ''क्रांतिकारी राष्ट्रवाद'' चीनी बुर्जूआजी के साम्राज्यवादी हितों को छिपाने के लिए एक भारी भ्रमजाल के सिवा कुछ नहीं था। माओवाद ने स्वयं को यह भ्रमजाल अपनाने तक सीमित रखा। दूसरे शब्दों में चीनी बुर्जूआज़ी के पुराने वैचारिक अभियानों में अपना सुर मिलाने तक।

वास्तव में, ''प्रतिभशाली माओ त्सेतुंग विचार'' तात्कालीन आधिकारिक स्तालिनवादी गुटकों की भोंडी चोरी से अधिक कुछ नहीं। माओ ने स्तालिन की प्रशंसा की और उसे ''मार्क्सवाद के महान निर्वाहक'' के तौर पर पेश किया। यद्यपि उसका मकसद था स्तालिन तथा उसके गुर्गों द्वारा मार्क्सवाद की निर्लज्ज जालसाज़ी की नकल। माओवाद का चीनी परिस्थितियों के अनुरुप मार्क्सवाद का तथाकथित अमल स्तालिनवादी प्रतिक्रांति के वैचारिक प्रकरणों को अमल में लाने के सिवा कुछ नहीं।

मार्क्सवाद से संपूर्ण जालसाज़ी

अब हम ''माओ त्सेतुंग विचार'' द्वारा संशोधित मार्क्सवाद के तथाकथित अमल के कुछ पहलूओं का मूल्यांकन करेंगे।

सर्वहारा क्रांति पर

माओ की किताबों के आधार पर चीनी इतिहास का अध्ययन पाठक को 1917 में उठी क्रांतिकाारी लहर के चीन पर असर संबंधी अंधेरे तथा अज्ञान में छोड देता है। माओवाद (और माओवादी अथवा अन्यथा आधिकारिक इतिहास) ने चीन में सर्वहारा इंकलाब को पूरी तरह दफना दिया है।

माओ सर्वहारा क्रांति का जिक्र इसे ''बुर्जूआ क्रांति'' में मिलाने के ध्येय से करता हैः *''1924-1927 की क्रांति एक सुस्पष्ट कार्यक्रम के आधार पर दो पारटियों –सीपीसी तथा कोमिन्तांग– में गठजोड की बदौलत संभव हुई। मात्र दो तीन बरसों में ही राष्ट्रीय क्रांति को भारी सफलताएँ हासिल हुईं (...) ये सफलताएँ कुआंग तौंग के क्रांतिकारी समर्थन के आधार की रचना तथा उत्तरी अभियान की सफलता पर आधारित थीं''*(10)। यह सब सफेद झूठ है। हमने देखा कि 1924 से 1927 के बीच का काल ''राष्ट्रीय क्रांति'' द्वारा नहीं अपितु तमाम बडे चीनी शहरों में मज़दूर वरग में क्रांतिकारी लहर द्वारा चरित्रित था जो हथियारबन्द बगावत तक उठी। सीपीसी तथा कोमिन्तांग में सहयोग, दूसरे शब्दों में सर्वहारा पारटी का बूर्जुआजी संग अवसरवादी गठजोड ''भारी सफलताओं'' पर नहीं बल्कि सर्वहारा की दुखदः हारों पर निर्मित था। अन्त में, एक क्रांतिकारी जीत होना तो दूर, ''उत्तरी अभियान'' बुर्जूआ पैंतरेबाजी के सिवा कुछ नहीं था जिसका मकसद था शहरों पर नियन्त्रण तथा मज़दूर वरग का नरसंहार। और इस अभियान का चरम बिन्दू था कोमिन्तांग द्वारा ठीक मज़दूरों का कतलेआम।

जहां तक 1926 का संबंध है मज़दूर आंदोलन में एक आम उभार के मध्य माओ *''तीस मई की घटनाओं की जड़ में हांग कांग तथा शंघाई की आम हडताल''(11)* का जिक्र करने से नहीं बच सकता था। पर 1939 तक इन जिक्रों को उसने निम्न मध्यम वरगीय बुद्दिजीवियों की मात्र नुमायाश में बदल दिया। 1927 में शंघाई का इतिहासिक सशस्त्र विद्रोह, जिसमें दस लाख से अधिक मज़दूरों ने हिस्सा लिया, का उसने जिक्र तक नहीं किया(12)।

सर्वहारा चेतना को मिटाने में पूँजीवादी विचारधारा में माओवाद के ''मौलिक'' योगदान का मुख्य पहलू था चीन में क्रांतिकारी आंदोलन के समूचे तजुरुबे, उसके ऐतिहासिक तथा विश्वव्यापी महत्व को सुनियोजित तरीके से दफन करना।

अन्तरराष्ट्रीयतावाद

यह सर्वहारा के ऐतिहासिक संघर्ष, और इस प्रकार मार्क्सवादे, के ऐतिहासकि उसूलों में से एक है। यह पूँजीवादी राज्यों के विनाश के और बूर्जुआ समाज द्वारा थोपी राष्ट्रीय सीमाओं पर पार पाने के सवाल को अपने में समेटे है। ''***निस्संदेह अन्तर्राष्ट्रीयतावाद साम्यवाद के आधारस्तंभों में से एक है। 1848 से यह एक स्थापित उसूल है कि "मज़दूरों का कोई देश नहीं होता" (….) गर पूँजीवाद ने राष्ट्र में अपने विकास का सर्वोपयुक्त ढांचा पाया तो साम्यवाद केवल विश्वव्यापी पैमाने पर ही स्थापित किया जा सकता है।"*** (पैम्फलेट ***राष्ट्र व वरग*** की भूमिका में से)।

माओ के हाथ में यह उसूल पूर्णता सिर के बल खडा कर दिया गया। उसके लिए देशभक्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद समरुप थे : ''***एक अन्तर्राष्ट्रीयतावादी क्या एक देशभक्त भी हो सकता है? न सिरफ हो सकता है बल्कि यह होना लाजिमी है (...) राष्ट्रमुक्ति युद्धों में, अन्तर्राष्ट्रीयतावादी उसूल का अमली रुप देशभक्ति है (...) हम एक साथ अन्तर्राष्ट्रीयतावादी तथा देशभक्त हैं और हमारा नारा है 'पितृभूमि के बचाव खातिर हमलावरों के खिलाफ संघर्ष'" (13)***। आईए ज़रा याद करें कि यह ''राष्ट्रीय युद्ध'' दूसरे विश्वयुद्ध के सिवा कुछ नहीं था। इस प्रकार साम्राज्यवादी जंग के लिए मज़दूर वरग की लामबन्दी सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का अमली रुप बना! ऐसे घिनौने भ्रमजाल इस्तेमाल करके ही बूर्जुआज़ी मज़दूरों को एक दूसरे का नरसंहार करने को राज़ी करता है।

माओ इस ''विलक्षण विचार'', जिसके अनुसार एक अन्तर्राष्ट्रीयतावादी एक देशभक्त भी हो सकता है, के जनक होने का दावा भी नहीं कर सकता। वह मात्र दिमित्रोव, स्तालिन के भाडे के एक सिद्वान्तकार, का भाषण दोहरा रहा था : ***"सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के लिए यह जरुरी है कि वह, एक माने में, स्वयं को हर देश के मुताबिक डाल ले (...) सर्वहारा संघर्ष के राष्ट्रीय रुप किसी भी मायने में सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के विरोध में नहीं पडते (...) समाजवादी इंकलाब राष्ट्र की मुक्ति लाएगा"(14)***। वह स्वयं कार्ल काउत्सकी जैसे सामाजिक देशभक्तों की घोषणाएँ दोहरा रहा था जिन्होंने 1914 में सर्वहारा को नरसंहार में झोंक दिया ''***मातृभूमि की रक्षा करना सब का एक कर्तव्य तथा हक बनता है; तमाम देशों के समाजवादियों के लिए इस हक को स्वीकार करने में ही असली अन्तर्राष्ट्रीयतावाद है***'(15)। हम माओ की निरन्तरता स्वीकार करने को तैयार हैं, पर मार्क्सवाद से नहीं अपितु उन ''सिद्वान्तों'' के संग जिन्होंने सदा पूँजी की सेवा में मार्क्सवाद को विकृत करने की कोशिश की।

वरग संघर्ष

हमे पहले ही दर्शा चुके हैं कि माओ ने अपनी तमाम रचनाओं में कैसे सर्वहारा के समूचे अनुभवों को दफनाया है। तो भी वह कभी ''***इंकलाब में सर्वहारा के अग्रणी रोल***'' का जिक्र करता नहीं अघाता। वरग संघर्ष पर ''माओ त्सेतुन्ग विचार'' का सबसे महत्वपूर्ण भाग है शोषित वरगों के हितों को शोषकों के आधीन करना : ''***माना हुआ उसूल है कि जापान के खिलाफ प्रतिरोध में, जीत के लिए सब कुछ त्यागना लाजिमी है। नतीजन, यह जरुरी है कि वरग संघर्ष के हितों को प्रतिरोधी जंग के अधीन रखा जाए और वे उसके विरोध में न जाएँ (...) हमें वरगों के संबंधों में आवश्यक सामंजस्य की एक उपयुक्त नीति लागू करनी होगी, एक नीति जो मेहनतकश जनता को राजनीतिक तथा भौतिक गारंटियों से वंचित नहीं करती, पर जो शासक वरगों के हितों को ध्यान में रखती है।"(16)***

जहां माओ की शब्दावली एक क्लासिक बुर्जूआ राष्ट्रवादी की है जो मांग करता है कि राष्ट्रीय

हितों के यानि शासक वरगों के हितो के ढांचे में "***राजनीतिक तथा भौतिक गारंटियों***" के वादों पर मज़दूर अपनी जान कुरबान कर दें। उसमें तथा अन्य में कोई भेद नहीं है सिवा उस विशेष निर्लजता के जिसके चलते इसे वह "मार्क्सवाद को गहराना" कहता है।

राज्य

माओवाद द्वारा पेश "मार्क्सवाद का विकास" राज्य के सवाल पर "नव जनवाद" के सिद्वान्त में सामने आता है जिसे पिछडे देशों के लिए "क्रांतिकारी मार्ग" के रुप में पेश किया जाता है। गर हम माओ त्से तुन्ग पर यकीन करें तो "***नवजनवाद की क्रांति (...) का नतीजा पूँजीपति वरग की तानाशाही नहीं बल्कि सर्वहारा के नेतृत्व में विभिन्न क्रांतिकारी वरगों के संयुक्त मोरचे की तानाशाही में निकलता है (...) यह समाजवादी इंकलाब से भी इस माने में भिन्न है कि यह चीन में केवल साम्राज्यवादियों, समझौताप्रस्तों तथा प्रतिक्रियावादियों के प्रभुत्व का अन्त करती है पर पूँजीवाद के उन तबकों का अन्त नहीं करती जो साम्राज्यवाद विरोधी तथा सामान्तवाद विरोधी संघर्ष में योगदान देते हैं।***"

माओ ने यूँ एक नए प्रकार के राज्य को खोज निकाला जो तथाकथित रुप से किसी वरग विशेष की नुमायन्दगी नहीं करता बल्कि जो वरगों का मोरचा अथवा गठज़ोड है। यह वरग सहयोग के सिद्वान्त की नई पेशगोई हो सकती है पर मार्क्सवाद से इसका कोई वास्ता नहीं। "नवजनवाद" का सिद्वान्त पूँजीवादी जनवाद के एक नए संस्करण के सिवा कुछ नहीं जो तमाम जनता के यानि सभी वरगों के राज्य होने का दम भरता है। फर्क सिरफ यह है कि माओ इसे "विभिन्न वरगों का मोरचा" करार देता है, और जैसे वह स्वयं मानता है "***मूलतः, नवजानवाद की क्रांति उस क्रांति से मेल खाती है जिसका आवाहन सनयात सेन ने अपने जनता के तीन सिद्वान्तों के साथ किया था (...) सनयात सेन ने कहा :*** "आधुनिक राज्य में, तथाकथित जनवादी व्यवस्था पर आमतौर पर पूँजीपति वरग की इजारेदारी रहती है और वह मात्र आम जनता के उत्पीडन का औज़ार बन गया है। इसके विपरीत, कोमिन्तांग द्वारा रक्षित जनवादी सिद्वान्त एक ऐसी जनवादी व्यवस्था का पक्षधर है जो आम जनता के हाथ में है, वह इस चीज़ की इज़ाजत नहीं देगा कि वह चन्द लोगों द्वारा हथिया ली जाए।"(17)

ठोस रुप से, "नवजनवाद का सिद्वान्त" सीपीसी के नियन्त्रण वाले इलाकों की किसान आबादी को नियन्त्रित करने का साधन था। बाद में यह सीपीसी द्वारा स्थापित राज्य पूँजीवाद को छिपाने की सैद्वान्तिक आढ़ बना।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

सालों तक माओत्से तुन्ग की "दार्शनिक रचनाओं" को युनीवरसिटी दायरों में बातौर "मार्क्सवादी दर्शन" पढाया जाता रहा। माओ के दर्शन का, अपनी छद्म मार्क्सवादी शब्दावली के बावजूद, न सिरफ मार्क्सवादी पद्वति से कोई वास्ता नहीं, यह मार्क्सवाद के पूर्णता विरोध में है। स्तालिन के भोंडेपनों द्वारा प्रेरित माओ का दर्शन उसके कर्ता की राजनीतिक विकृतियों की औचित्यसिद्वि के सिवा कुछ नहीं। मसलन, आइऐ अन्तरविरोधों के सवाल से निपटने के लिए उस द्वारा इस्तेमाल शब्दाडम्बर को लें "***किसी पेचीदा चीज़ के विकास की प्रक्रिया में अनेक अन्तरविरोध पाये जाते हैं जिनमें से एक आवश्यकतया वह सिद्वान्त होता है जिसका अस्तित्व तथा विकास अन्य के अस्तित्व तथा विकास को तय अथवा प्रभावित करता है (...) चीन जैसा अर्धसामन्ती एक देश बुनियादी अन्तरविरोध तथा गौण अन्तरविरोधों के विकास के लिए एक क्लिष्ट ढांचा प्रदान करता है। साम्राज्यवाद जब ऐसे देश के खिलाफ जंग छेड देता है तो (मुट्ठी भर गद्दारों को छोड) उसे गठित करते विभिन्न वरग अस्थायी रुप से साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रीय युद्ध में एकजुट हो सकते हैं। इस प्रकार उस देश तथा साम्राज्यवाद में अन्तरविरोध बुनियादी अन्तरविरोध बन जाता है और देश के अन्दर विभिन्न वरगों के अन्तरविरोधों को वह अस्थायी तौर पर गौण तथा आधीन दरजे पर धकेल देता है (...) मौजूद चीन-जापान युद्ध मे स्थति यही है।***"

दूसरे शब्दों में "अन्तरविरोधों के विस्थापन" के माओवादी "सिद्वान्त" का अर्थ मात्र यह कहना है कि राष्ट्रीय हित के नाम पर सर्वहारा को पूँजीपति वरग के खिलाफ अपना संघर्ष त्यागना होगा, कि साम्राज्यवादी नरसंहार के ढांचे में शत्रु वरगों को एकजुट होना होगा, कि शोषित वरगों को शोषक वरगों के हितों के समक्ष झुकना होगा। दुनिया भर के विश्वविद्यालयों में बुर्जूआज़ी द्वारा माओवादी दर्शन फैलाये जाने तथा उसे बातौर मार्क्सवाद पेश करने की बजह हम समझ सकते है!

निचोड के तौर पर हम कहेंगे कि माओवाद का न तो मज़दूर वरग के संघर्षों, न उसकी वरग चेतना और न उसके क्रांतिकारी संगठनों से कोई वास्ता है। मार्क्सवाद से उसका कोई लेना देना नहीं : यह न तो सर्वहारा के भीतर एक रुझान है न ही सर्वहारा के क्रांतिकारी सिद्वान्त का कोई विकास है। इसके विपरीत, माओवाद मार्क्सवाद की भोंडी विकृति के सिवा कुछ नहीं। इसका एकमात्र कार्य है प्रत्येक क्रांतिकारी सिद्वान्त को दफन करना, सर्वहारा वरग चेतना को कुन्द करना और उसके स्थान पर एक बेहूदा, संकीर्ण-मन राष्ट्रवादी विचारधारा को स्थापित करना। एक "सिद्वान्त" के तौर पर, माओवाद प्रतिक्रांति तथा साम्राज्यवादी युद्ध के पतनशील दौर में पूँजीपति परग द्वारा अपने अनेकों रुपों में से एक है।

एलडीओ, इंटरनेशनल रिव्यू नंबर-94

1). देखें *इंटरनेशनल रिव्यू* नंबर 81 और 82.
2). *हूनान में किसान आंदोलन संबंधी जांच की रिपोर्ट।* माओ त्सेतुंग, मार्च 1927।
3). चेन डूयक्सी संबंधी अधिक जानकारी के लिए देखे नीचे दिया बाक्स।
4). लेज्लो लेडेनी द्वारा उदृत। *चीन की कम्युनिस्ट पारटी तथा मार्क्सवाद,* हर्स्ट और कम्पनी, 1992।
5). "चीनी सोवियतों" की दूसरी कांग्रेस में माओ का भाषण, जापान में प्रकाशित। लेज्लो लेडेनी द्वारा उदृत। उपरोक्त।
6). *चीन में अन्तिम चांस। जान एस सर्विस के दूसरे महायुद्ध के संवाद।* विनटेज़ बुक्स, 1974।
7). *हूनान में किसान आंदोलन संबंधी जांच की रिपोर्ट।* माओ त्सेतुंग, मार्च 1927।
8). *कम्युनिस्ट पारटी तथा कोमिन्तांग में सहयोग की स्थापना के बाद आवश्यक कार्यभार,* माओ त्सेतुंग, 1937।
9). *जापान विरोधी संयुक्त मोरचे में मौजूदा कार्यनीतिक मसले,* माओ त्सेतुंग, मई 1940।
10). देखें *इंटरनेशनल रिव्यू* नंबर 81 में *इस श्रांखला का पहला लेख।*
11). *चीनी समाज में वरगों का विशलेषण,* मार्च 1926।
12). *चीनी क्रांति और सीपीसी,* माओ, अक्तूबर 1938।
13). *राष्ट्रीय युद्ध में सीपीसी की भूमिका,* माओ त्सेतुंग, अक्तूबर 1938।
14). *फासीवाद, जनवाद एवम लोकप्रिय मोरचा,* अगस्त 1935 में कोमिन्टरन की सातवीं कांग्रेस को ज्योर्जी दिमत्रोव द्वारा पेश रिपोर्ट।
15). *दूसरे इंटरनेशन का पतन* में लेनिन द्वारा सितंबर 1935 में उदृत।
16). *राष्ट्रीय युद्ध में सीपीसी की भूमिका,* उपरोक्त।
17). *चीनी क्रांति और सीपीसी,* उपरोक्त।

आईसीसी का इंटरनेशनल लीफलेट

युगोस्लाविया पर नाटो की बमबारी

पूँजीवाद जंग है, जंग छेडो पूँजीवाद पर!

एक बार फिर युगोस्लाविया विनाश का शिकार है। पर इस बार बजह 1991 से जारी "अन्तर जातिय" नरसंहार नहीं जिन्हे महाशक्तियों ने विभिन्न राष्ट्रवादी गिरोहों को हथियारों की सप्लाई तथा सहायाता द्वारा भडकाया।

सर्बिया तथा कोसोवो की आबादी पर आग बरसाने वाले आज नाटो के "गणतन्त्र" हैं। भ्रम मत पालिए। बम्बों की आग तले मात्र सैनिक ठिकाने नहीं। वहां सैनिक हैं, वर्दीधारी मज़दूर हैं किसान हैं जो वहां अपनी मरज़ी से नहीं हैं। वहां नागरिक आबादी है, औरतें, बच्चे तथा बूढे हैं जिनका दुर्भाग्या कि उनके घर फौजी अड्डों, रिफायनरियों तथा आमर्ज कारखानों के पास हैं। यानी अधिकतर मज़दूर परिवार। और वहां है भयभीत तथा लाचार आबादी जो हज़ारों की तदाद में निर्वासन को मज़बूर है।

एकबार फिर पूँजीवाद अपना असली चेहरा दिखा रहा है : एक अन्तहीन बर्बरता जहां महाशक्तियों की उच्च्व तकनालोजी मौत तथा विनाश की सेवा में रत्त है।

टूट गए "शान्ति युग" संबंधी वे सारे भ्रम जिनका वादा उन्होंने पूर्वी गुट के पतन के बाद किया था! तथाकथित "समाजवादी गुट" का तथा शीत युद्ध का अन्त सैनिक टकरावों का अन्त नहीं लाया। इसके उल्ट। 1989 से सैनिक तनावों तथा नरसंहारों का फैलना जारी है : इराक में, भूतपूर्व युगोस्लाविया में, भूतपूर्व सोवियत यूनियन के गणतन्त्रों में, सारे अफरीका में, अफगानिस्तान में, भारत तथा पाकिस्तान में।

रुसी गुट के पतन के बाद पश्चिमी गणतन्त्रों द्वारा उदघोषित "नई विश्वव्यवस्था" का सच यही है : उत्तरोतर खूनी होती अराजकता जो अब यूरोप के मध्य फैल गई है।

विश्व पूँजीवाद के तमाम रुपों, "जनवादी" अथवा "तानाशाही", के आगोश में जंग पलता है।

मिलोशेविक, क्लिंटन और जो़डीदार : सब नरहत्यारे तथा बदमाश!

1991 के खाडीयुद्ध में पश्चिमी गणतन्त्रों ने नगाड़े पीटे : उनकी जंग एक "साफसुथरी", सर्जीकल जंग है जिसका लक्ष्य है "अन्तर्राष्ट्रीय कानून" की रक्षा तथा बगदाद के कातिल का सफाया! झूठे तथा पाखण्डी।

"साफसुथरी" जंग का नतीजा था हज़ारों मौतें! आजतक, नागरिक आबादी इस भयंकर मारकाट की कीमत अदा कर रही है। और सद्दाम की तानाशाही आज तक इराक पर हावी है। हमारे शासक तानाशाहों से लडने की बात करते हैं पर इसके लिए वे तानाशाहों द्वारा सतायी आबादी को अपने बम्बों से कुचल रहे हैं।

"अन्तर्राष्ट्रीय कानून", यह यूरोप तथा अमेरिकी गणतन्त्रों की आखिरी चिन्ता है। नाटो द्वारा यू एन की तिनके की आड़ बिना सर्बिया की बमबारी साफ सिद्व करती है : विश्व नेताओं को "अन्तर्राष्ट्रीय कानून" की तनिक परवाह नहीं।

ये तमाम साम्राज्यवादी बदमाश "कानून" की रक्षा का दावा करते हैं। पर कौनसा कानून? **उनका** कानून, जंगल का कानून, सर्वशक्तिमान का कानून, अपराधजगत का कानून। पूँजीवाद का कानून।

माना मिलोशेविक सद्दाम समान एक नीच खूनी तानाशाह है। पर वह महाशक्तियों को क्या सीख देगा। वे हिरोशिमा, कोरिया, वियतनाम, अलजीरिया तथा इराक में विशाल पैमाने पर यातनाओं तथा नरसंहारों से कभी नहीं झिझके।

दबेकुचलों के ये नकली हमदर्द नीचता तथा शातिरता की हदें पार कर गए हैं। मिलोशेविक जैसे तानाशाहों की अगुआई वाले तमाम शासन (पिनोचे, सद्दाम, कबीला, मोबोतू और कम्पनी) जिनकी आज ये निन्दा करते हैं इन्हीं के स्थापित, समर्थित तथा सशस्त्र हैं।

वामपंथी दल : सैनिक बर्बरता के हरावल

वामपंथी दल —लेबर, समाजवादी, ग्रीन आदि—सब मज़लूमों तथा शोषितों का सहारा होने, "मानव हकों" के हिमायती तथा शान्ति के दूत होने का दम भरते हैं।

आज इस नरसंहार में शामिल अधिकतर सरकारें इन्हीं वामपंथी पारटियों की हैं। सत्तासीन वामपंथ पूँजीवाद के आर्थिक हितों का वफादार चाकर है। वह मज़दूरों पर बेरोक बार करता है। वह "जनवादी" क्लिंटन के पीछे वेहिचक तथा जीजान से पूँजीवादी सैनिक बर्बरता में रत्त है।

बलेयर, श्रोड,र, जोसफिन उन सामाजवादी नेताओं के जायज वंशज हैं जिन्होंने 1914 में मज़दूरों को मरने के लिए खंदकों में धकेल दिया। और फिर, जैसे जर्मनी में 1919 में, जब सर्वहारा ने पूँजीवाद का तख्ता पलटने की कोशिश की, मज़दूर वरग के कतलेआम का नेतृत्व किया।

पूँजीवाद बढती खूँरेज़ी तथा अराजकता है

शान्ति रक्षा के लिए जंग। मानवतावादी जनवाद के बचाव के लिए जंग। झूठ जितना नग्न है उतना ही घृणित। शासक वरगों ने सभ्यता के नाम पहले विश्वयुद्ध की मारकाट का श्रीगणेश इस दावे से किया : "यह सब युद्धों के अन्त के लिए युद्ध हैं"। बीस सल बाद खूँरेज़ी और बदतर थी। दूसरे विश्वयुद्ध में मित्र देशों की जीत नाज़ी बर्बरता पर जनवाद की जीत मानी गई। पर 1945 से जंगों का अन्त नहीं हुआ है और उन्होंने उतनी ही जानों की बलि ले ली है जितनी स्वयंदूसरे विश्वयुद्ध ने।

मिलोशेविक तथा नाटो की लडाई में शरीक तमाम रक्तरंज़ित बदमाश उस व्यवस्था के योग्य प्रतिनिधि हैं जो धरती पर राज करती है। एक व्यवस्था जो धनी देशों में भी करोडों लोगों को गरीबी का शिकार बना सड़क पर ला फेंकती है। जो मानवजाति के तीन चौथाई को अकाल, महामारियों तथा अन्तहीन मारकाट में झोंक देती है। एक व्यवस्था जो आज कल्पनातीत अन्धव्यवस्था को जन्म दे रही है।

अपनी भयंकर फौजी ताकत का कहर बरसा अमेरिकी गाडफादर तथा उसके पिछलग्गू कुव्यवस्था और जन आबादी की मारकाट रोकने का दावा करते हैं। इतना बडा झूठ! "अप्रेशन अलायड फोर्स" का फल केवल यही हो सकता है : अलबानियन आबादी, जिसकी रक्षा का वे दम भरते हैं, पर और अधिक हत्याओं की मार, बाल्कान में फैलती हुई जंग, यूरोप में फैलती खूँरेज़ी अराजकता। नाटो शक्तियां सर्बिया में जितनी चाहें हत्याएं कर सकती हैं। इराक समान यहां भी यह नया "मानवतावादी" जेहाद किसी "नई विश्वव्यवस्था" को जन्म नहीं देगा।

जंगें "कूटनीतिक भूल" अथवा नेताओं की

"दुर्भावना" का फल नहीं होतीं। वे अपने अनुलंघनीय आर्थिक संकट के समक्ष पूँजीवाद का एकमात्र जवाब हैं। यह संकट है जो राष्ट्रों के बीच शत्रुताएें तीखी कर रहा है। संकट जितना गहराएगा, जैसे आज हो रहा है, पूँजीवाद उतना ही खून में लोट लगाएगा। जंग उतनी ही विकसित देशों के करीब आती जाएगी।

आज और हम क्या देख रहे हैं? पचास बरसों में पहली दफा महाशक्तियों ने यूरोप में एक विशाल खुली जंग छेड दी है। और अभी यह थमी नहीं है। भविष्य अतीत से भी अधिक रक्तरंजित तथा बर्बरता भरा होग।

केवल मज़दूरों का वरग संघर्ष ही पूँजीवादी बर्बरता को मिटा सकता है

कल के समान आज भी जन आबादी और खासकर मज़दूर साम्राज्यवादी जंग का पहला शिकार हैं। इराक की तरह सर्बिया में भी वर्दीधारी मज़दूर, ना कि सरकारी अधिकारी, गोलेबारुद का काम करेंगे। गर नाटो दस्तों का प्रयोग किया जाता है तो यह मज़दूर वरगीय परिवार होंगें जो अपने मृत वच्चों के लिए रोऐंगे।

पर मज़दूर वरग केवल जंग का प्रथम शिकार नहीं। वही वह एकमात्र ताकत भी है जो असल में पूँजीवादी बर्बरता का मुकाबला कर सकता है।

यह मज़दूर वरग ही था जिसने 1917 में रुस में तथा 1918 में जरमनी में शासक वरग को प्रथम विश्वयुद्ध बंद करने को मज़बूर किया। गर दूसरा महायुद्ध रोकने अथवा उसका अन्त करने में मज़दूर असफल रहे तो इसलिए कि वे स्तालिनवादी प्रतिक्रांति हाथों पिटे हुए तथा फसीवाद द्वारा आतन्कित थे। या वामपंथी परटियों द्वारा "लोकप्रिय मोरचों" अथवा "प्रतिरोध" के झण्डों तले भरती थे। शासक वरग का हर धड़ा मज़दूर वरग से उसकी ताकत छिपाना चाहता है :

- यह यकीन दिलाकर कि युद्ध तथा शान्ति केवल विश्व नेताओं की कूटनीतिक वार्ताओं पर निर्भर,
- "साम्यवाद की मौत" के अपने अभियानों द्वारा यकीन दिला कर कि सर्वहारा क्रांति का नतीजा स्तालिनवादी तानाशाही के सिवा कुछ नहीं हो सकता,
- मज़दूरों के क्रोध तथा व्याकुलता को "शान्तिपूण" पूँजीवाद के भ्रमों की सडी ज़मीन की और मोड।

"शान्तिवाद" सदा युद्धउन्मादियों का संगी रहा है। वार्ताओं की मांग करते और सरकारों से "बुद्धिमानी" दिखाने की अपील करते प्रदर्शनों से नरसंहार नहीं रुक जाएगा। यह हमने पहले भी देखा है : विश्वयुद्धों से पहले, वियतनाम युद्ध में और खाडीयुद्ध में। ये तमाम छलकपट मज़दूर वरग को उस एकमात्र संघर्ष से गुमराह करने का साधन हैं जो असल में जंग के खिलाफ डट सकता है और हमेशा के लिए इस बर्बरता का अन्त कर सकता है : शत्रु वरग, शोषकों तथा कातिलों के वरग, के खिलाफ समूचे शोषित वरग के विशाल तथा एकीकृत संघर्ष।

शासक वरग द्वारा अपनी जंग खातिर थोपी कुर्बानियां अस्वीकार करके। व्यवस्था के संकट की मार सहने से मना करके। मज़दूर उच्चतम कुर्बानी –साम्राज्यवादी जंग में अपने जीवन की– अस्वीकार करने की सामुहिक शक्ति बटौर सकते हैं।

महाशक्तियों द्वारा शक्ति की नुमायश से दबने से मना करके, मज़दूर अपनी लाचारी की भावना पर पार पाने में सफल होंगे और मानवजाति के भविष्य तय की अपनी क्षमता पर भरोसा पुनरहासिल करेंगे।

शोषित वरग के रुप में अपने हितों की हिफाजत के व्यापक संघर्ष विकसित करके, संघर्ष में एकजुटता स्थापित करके, मौजूदा स्थिति के दाव कितने गंभीर हैं, इसके प्रति सजग होकर, मजदूर हर देश में पूँजीवाद और उसकी बर्बरता को मिटा पाएँगे।

मज़दूरों का कोई देश नहीं है!
दुनिया के मज़दूरो, एक हो जाओ!
साम्राज्यवादी लुटेरों के खिलाफ वरग युद्ध!
इससे पहले कि वह मानवता को खतम कर दे, पूँजीवाद को खतम कर दो।

इंटरनेशनल कम्युनिस्ट करण्ट

(जरमनी, बेलजियम, स्पेन, अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन, भारत, इटली, मेक्सिको, हौलैण्ड, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड, वेनजुएला में वितरित)

Subscriptions-स्दस्यता ुल्क

World Revolution (Monthly Paper of the ICC in Britain)	Rs. 100/-
International Review	Rs. 60/-
Internationalism	Rs. 40/-
कम्युनिस्ट इंटरने नलिस्ट	Rs. 30/-
Combined Sub of IR/WR/CI	Rs. 150/-

आ सीसी का नू ं के लिए निम्न पते पर लिखें :
Post Box No. 25, NIT, Faridabad-121001, Haryana

आईसीसी प्रकाशन
ICC Press
(Write to the following addresses)

Accion Proletaria
Apartado Correos 258,
Valencia, **Spain**

Communist Internationalist (Hindi)
POB 25, NIT, Faridabad-121001,
Haryana, **India**

Internacionalismo
A P 20674, San Martin,
Caracas 1020A, **Venezuela**

Internationalism
Post Office Box 288, New York,
NY 10018-0288, **USA**

Internationalisme
BP 1134 BXL1, 1000 Bruxelles,
Belgium

Internationell Revolution
Box 21 106, 100 31 Stockholm,
Sweden

Revolucion Mundial
Apdo Post 15-024, CP 02600,
Distrito Federal, Mexico, ***Mexico***

Revolution Internationale
RI, Mail Boxes 153, 108, Rue
Damremont, 75018, Paris, **France**

Rivoluzione Internazionale
CP 469, 80100 Napoli, **Italy**

Weltrevolution
Postfach 410308, 5000 Koln 41,
Germany

Weltrevolution
Postfach 2216, CH-8026, Zurich,
Switzerland

Wereldrevolutie
Postbus 11549, 1001 GM
Amsterdam, **Holland**

World Revolution
BM Box 869, London WC1N 3XX
Great Britain

www.internationalism.org
The ICC's website opened recently and is under development. It will be updated each month in English. In future news and texts will be added from ICC press in other languages.

संपादक-प्रकाशक बलन्विदर सिँह द्वारा बालाजी प्रेस नवीन शाहदरा से छप कर बी1/19, सेक्टर 34, नौएडा से प्रकाशित। निजी वितरण के लिए

आईसीसी की बुनियादी पोजीशनें

इंटरनेशनल कम्युनिस्ट करण्ट निम्न राजनीतिक पोजीशनें डिफेंड करता है:

●पूँजीवाद पहले महायुद्ध से एक मरणासन्न व्यवस्था रहा है। इसने दो बार मानवता को संकट, विश्वयुद्ध, पुनरनिर्माण और नए संकट के आवर्त में धकेला है। 1980 के दशक में वह पतनशीलता की अन्तिम अवस्था, सडन की अवस्था, में दाखिल हुआ। यह अनपलट ऐतिहासिक पतन केवल एक ही विकल्प पेश करता है: समाजवाद व बर्बरता, विश्व साम्यवादी क्रांति अथवा मानवता का विनाश।

● 1871 का पेरिस कम्युन एक ऐसे दौर में सर्वहारा का क्रांति का पहला प्रयास था जब हालात अभी इसके लिए परिपक्क नहीं थे। पतनशीलता के आरंभ के साथ ये परिस्थितियां पैदा हो गईं। एक विश्व क्रांतिकारी लहर जिसने साम्राज्यवादी युद्ध का अन्त किया और जो कई साल तक जारी रही के मध्य रुस में 1917 की अक्तूबर क्रांति एक सच्ची विश्व कम्युनिस्ट क्रांति की ओर पहला कदम थी। इस क्रांतिकारी लहर की पराजय ने, खासकर 1919-23 में जरमनी में, रुसी इंकलाब को अलग-थलग डाल कर उसे तीव्र पतन को अभिशप्त कर दिया। स्तालिनवाद रुसी क्रांति की सन्तान नहीं बल्कि उसका दफनकर्ता था।

●सोवियत संघ, पूर्वी यूरोप, चीन, क्यूबा आदि में उदित राज्यीकृत शासन, जिन्हें ''समाजवादी'' अथवा ''कम्युनिस्ट'' करार दिया गया, राज्यपूँजीवाद की ओर विश्वव्यापी रुझान की एक खास नृशंस अभिव्यक्ति थे। स्वयं यह रुझान पतनशीलता के दौर की मुख्य विशेषता है।

●वीसवीं सदी के आरंभ से सभी जंगें साम्राज्यवादी जंगें हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय आखाडे में जगह जीतने अथवा बनाये रखने के छोटे बडे राज्यों के संघर्ष का हिस्सा हैं। ये जंगें मानवजाति के लिए बढते पैमाने पर मृत्यु तथा विनाश के सिवा कुछ नहीं लातीं। अपनी अन्तर्राष्ट्रीय एकजुटता द्वारा तथा सभी देशों में बुर्जुआजी के खिलाफ संघर्ष द्वारा ही मज़दूर वरग इनका जवाब दे सकता है।

●सभी राष्ट्रवादी विचारधाराएँ –"राष्ट्रीय मुक्ति", ''राष्ट्रों का आत्मनिर्णय का हक'' आदि– उनका सबब जातिय, ऐतिहासिक, धार्मिक जो भी हो, मजूदर वरग के लिए विष हैं। उन्हें पूँजपति वरग के इस या उस धडे का पक्ष लेने को प्रेरित करके, वे मज़दूर वरग को बांटती तथा उन्हें अपने शोषितों के हितों तथा जंगों खातिर आपसी मारकाट की ओर लेजाती हैं।

●पतनशील पूँजीवाद में संसद तथा चुनाव एक छदम के सिवा कुछ नहीं। सांसदीय सर्कस में भागीदारी का कोई आवाहन उस झूठ को मज़बूत ही कर सकता है जो चुनावों को शोषितों के लिए असली विकल्प के रुप में पेश करता है। ''जनवाद'', पूँजीपति वरग के प्रभुत्व का एक खासा पाखण्डपूर्ण रुप, पूँजीपतिवरग की तानाशाही के अन्य रुपों जैसे स्तालिनवाद तथा फासीवाद से मौलिक तौर पर भिन्न नहीं।

●पूँजीपति वरग के सभी धडे एक समान प्रतिक्रियावादी हैं। सभी तथाकथित ''मजूदर'', ''समाजवादी'' तथा ''कम्युनिस्ट'' (अब भूतपर्व 'कम्युनिस्ट') पारटियां, वामपंथी संगठन (त्रात्सकीवादी, माओवादी तथा भूतपूर्व माओवादी, आधिकारिक अराजकतावादी) पूँजीपतिवरग के राजनीतिक ढांचे का वामपंथ हैं। ''लोकप्रिय मोरचों'', ''फासीवाद विरोधी मोरचों'' तथा ''संयुक्त मोरचों'' के तमाम दांवपेच जो सर्वहारा के हितों को पूँजीपतिवरग के किसी धडे के हितों से मिलाते हैं, सर्वहारा के संघर्ष को गुमराह करने तथा उसे कुचलने का काम करते हैं।

●पूँजीवाद की पतनशीलता के साथ यूनियनें सभी जगह सर्वहारा के भीतर पूँजीवादी व्यवस्था के औजार बन गई हैं। यूनियन संगठन के विभिन्न रुप, ''आधिकारिक'' अथवा ''रैंक एण्ड फायल'', केवल मज़दूर वरग को अनुशासित करने तथा उसके संघर्षों से भीतरघात करने का ही काम करते हैं।

●अपनी लडाईं को आगे बढाने के लिए मज़दूर वरग को अपने संघर्षों को एकीकृत करना है, सर्वसत्ता संपन्न आमसभाओं तथा नुमन्यदा कमेटियों, जिनके नुमन्यदों को कभी भी वापिस बुलाया जा सके, द्वारा उसे अपने हाथ में लेना है।

●आतंकवाद किसी भी प्रकार से सर्वहारा संघर्ष का रास्ता नहीं। ऐतिहासिक भविष्य से रहित एक सामाजिक तबके की तथा निम्न मध्यम वरग के सडन की अभिव्यक्ति आतंकवाद, जब वह पूँजीवादी राज्यों में स्थायी जंग की सीधी अभिव्यक्ति नहीं, सदैव पूँजीपति वरग द्वारा छल-कपट की उर्वर जमीन रहा है। छोटे गुटों द्वारा गुप्त गतिविधि की वकालत करता वह वरग हिंसा, जो सर्वहारा की सचेत तथा संगठित जनकार्यवाही से पैदा होती है, के पूर्ण विरोध में है।

●मज़दूर वरग ही वह एकमात्र वरग है जो कम्युनिस्ट इंकलाब कर सकता है। उसका क्रांतिकारी संघर्ष मज़दूर वरग को अवश्यंभावी रुप से पूँजीवादी राज्य से टकराव की ओर ले जाएगा। पूँजीवाद के विनाश के लिए मज़दूर वरग को सभी विद्यामान राज्यों का विनाश करना होगा तथा विश्व स्तर पर सर्वहारा की तानाशाही स्थापित करनी होगी : समूचे सर्वहारा को एकजुट करती मज़दूर कौंसिलों की अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता।

●मज़दूर कौंसिलों द्वारा समाज के कम्युनिस्ट रुपांतरण का अर्थ ''सेल्फ मैनेजमेण्ट'' अथवा अर्थव्यवस्था का राष्ट्रीयकरण नहीं। साम्यवाद सर्वहारा द्वारा सचेत तौर पर पूँजीवादी सामाजिक संबंधो –उजरती श्रम, मालों का उत्पादन, राष्ट्रीय सीमाओं– के भंजन की मांग करता है। इसका अर्थ है एक विश्व समुदाय की स्थापना जिसमें तमाम गतिविधि मानवीय जरुरतों की पूर्ण तृप्ति की ओर निदेशित है।

●क्रांतिकारी राजनीतिक संगठन मज़दूर वरग के अगुआदस्ते का गठन करता है। सर्वहारा के भीतर वरग चेनना के प्रसार में वह एक सक्रिय कारक है। उसका रोल न तो ''मज़दूर वरग को संगठित करना'' है न ही उसके नाम पर ''सत्ता हथियाना''। बल्कि उसका रोल है संघर्षों के एकीकरण की ओर, मज़दूरों द्वारा नियन्त्रण संभालने की ओर गति में सक्रिय रुप से शरीक होना और इसके साथ ही सर्वहारा संघर्ष के क्रांतिकारी राजनीतिक लक्षों को सपष्ट करना।

हमारी गतिविधि

●सर्वहारा संघर्ष के लक्ष्यों तथा तरीकों का, उसके फौरी तथा ऐतिहासिक हालातों का राजनीतिक तथा सैद्वान्तिक स्पष्टीकरण।

●सर्वहारा के क्रांतिकारी एक्शन की ओर लेजाती प्रक्रिया में योगदान के घ्येय से, अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर एकजुट तथा केन्द्रीयकृत, संगठित हस्तक्षेप।

●विश्व कम्युनिस्ट पारटी, जो पूँजीवाद को उलटने तथा कम्युनिस्ट सामाज की रचना के लिए मज़दूर वरग के लिए अपरिहार्य है, के गठन की ओर लक्षित क्रांतिकारियों का पुनरगठन।

हमारी जडें

क्रांतिकारी संगठनों की पोजीशनें तथा गतिविधि मज़दूर वरग के अतीत के तजुरुबे की व उसके राजनीतिक संगठनों द्वारा अपने इतिहास दौरान निकाले सबकों की उत्पति होती है। इस प्रकार, आईसीसी मार्क्स तथा ऐंग्लस के ***कम्युनिस्ट लीग*** (1847-52), तीन इन्टरनेशनलों (***इन्टरनेशनल वर्किन्गमेन्ज एसोसिएशन***, 1864-72, ***सोशलिस्ट इन्टरनेशनल,*** 1889-1914, ***कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल,*** 1919-28), पतित होते तीसरे इन्टरनेशनल से 1929-30 में अलग हुए वाम धड़ों, खासकर ***जमर्न, डच तथा इतालवी वाम*** के उत्तरोत्तर योगदानों में अपनी जड़े खोजता है।